वनौषधि विशेषांक (पंचम भाग) की विषयानुक्रमणिका

बरना 1
बरमूला (बरमाला) 6
बरारा 8
बरासल पान 8
बराहंता 8
बरू 9
बरोला 10
बलसां 10
बलाया 11
बलूत 11
बसंत 13
बसट्रा 13
बस्तियाज़ 14
बहमन (सुफेद) 14
बहमन लाल 15
बहेड़ा 15
बांदा बड़ा 21
बांदा (छोटा) नं0 2 23
बाँदा नं0 3 (चुल्लू का बाँदा) 23
बाँदा नं0 4 (जुडा हुआ बाँदा) 25
बाँदा नं0 5 (चिमड़े पान वाला) 26
बाँदा नं0 6 (बाँदा चुपकने वाला) 26
बांस 26
वंश लोचन 32
बाइसा गूगल 35
बाकला 35
बाकेरी मूल 37
बागनेला 39
वाघचुरा 39
बाजरा 40
बाण पुष्प 41
बादशाह सालप 41
बादाम (मीठा) 41
बादाम देशी 52
बादाम जंगली 53
बादावर्द 54
बादियान खताई 54
बाबूना 56
बाबूना गाव 58
बायबिडंग नं0 1 59
बायविडंग नं0 2 69
बायलो 70
बारक कांटा 70
बारतंग नं0 1 70
बरतंग नं0 2 71
बाराही कन्द नं0 1 73
बाराही कंद नं0 2 77
बालरक्षा 78
बालूका साग 78
बावची 78
बाबली बूटी 86
बासक 87
बिंगली 87
बिंदा 87
बिंदी मुट्ठी 88
बिखमा 88
बिछुआ 89
बिच्छू बूटी 89
विजय सार 91
बिजिंदक 93
बिथुआ 93
बिदारीकंद नं0 1 93
बिदारीकंद नं0 2 96
बिधारा नं0 1 97
बिधारा नं0 2 (समुद्र शोष) 102
बिधारा नं0 3 (दोपाती लता) 103
बिधारा नं0 4 (गंभीरी भेद) 104
बिना 105
बिरंजासिफ 106
बिरमोवा 107
बिलायती इमली 107
बिलारी 107
बिलिंबी 107
बिल्ली लोटन 108
बिशोनी 110
बिसफेज 110

बिसौरा 111
बिही 111
बुई 114
बुत्म (बतुम) 114
बुन्दार 115
बुब्बुर बूटी 115
बुलु 116
बुराँस 116
बुरोचूचा 116
बुशान 116
बुहरना 116
बेकल (विकंकत) 117
बेंत 118
बेत्तिर 120
बेद–सादा 120
बेद मुश्क 122
बेद लैला 124
बेंदरली 124
बेदाना 125
बेफोल 125
बेबीना 125
बेर 126
बेरबंज 133
बेल 133
बेलन्तर 150
बेला (मोगरा) 151
बेलाडौना 155
बेलि 158
बेली पाता 159
बैंगन 159
बोकड़ी 165
बोंदरी 165
बोल (हीराबोल) 165
ब्रह्मकमल 169
ब्रह्मदण्डी 169
ब्राह्मी 172
भंडा 185
भगलिंगी 185
भटबांस 186
भद्रक 186
भद्रदन्ती 187
भसम कन्द 187
भांग 187
भांगरा (श्वेत) 206
भाटिया 220
भाटी 220
भांट 221
भांवर 221
भारंगी 222
भिण्डी 225
भिंत गलोडी 227
भिल्लर 227
भिलावा 227
भुंई अरण्डी 239
भुंई आंवला 239
भुंई आंवला लाल 240
भुंई आंवला बड़ा 241
भुई कन्द (पहाड़ीकंद) 241
भुंइ खाखसा 242
भुंई गली 242
भुंई चम्पा 242
भुंई जाम 243
भुंई दरी 243
भूमि कुम्हडा 243
भूतकेशी 244
भूतिया बादाम 244
भेदस 244
भोजपत्र 244
भोमा 245
भोरी लोथ 245
भोलन (भ्रमरच्छली) 245
मक्र (मंडुआ) 246
मक्का 247
मकाई 248
मकोय 248
मखाना 252
मजीठ 253
मझेरी यून 256
मटर 256
मछेछी 257

ममीरा	257
मदनघंटी	258
मयूर शिखा नं0 1	259
मोर शिखा नं0 2	259
मयूर पंखी	260
मजनूँ	261
मरुल	261
मधुक	262
मरचुला	262
मरेडी	262
मरोडफली	262
मसूर	263
मलाडी	265
महुआ	265
महाभरी बच	268
माजूफल	268
मरियाद बेल	272
मरवा	272
मरेठी (बाबूना)	273
मस्तंगी	274
महामेदा	276
माईमूल	277
मातीसूल	277
माधवीलता	277
मानकन्द	278
मारवेल	280
मालती नं0 1	280
मालती नं0 2	281
माषपर्णी	281
मारी का झाड	281
मालकागंनी	282
मिर्ची लाल	286
मिरंजान जोश	288
मिश्के तरामशीअ	288
मुख जली	289
मुंजाल	290
मुचकन्द	290
मुलेठी	292
मुखतरी (मुस्तरु)	296
मुसना	297
मुँज	297
भद्रमुंज (रामसर)	298
मूंग	298
मूंगफली	301
मूली	302
मूर्वा नं0 1	308
मूर्वा नं0 2	309
मूर्वा नं0 3	310
मूर्वा नं0 4	314
मूर्वा नं0 5	315
मूषाकानी	316
मूषाकानी नं0 2	316
मूषाकानी नं0 3	317
मूसली सफेद नं0 1	318
मूसली सफेद नं0 2	319
मूसली स्याह	322
मेढासिंगी	324
मेथी	324
मेदा	327
मैदा लकड़ी	328
मैदा लकड़ी नं0 2	330
मेनफल	331
मेंहदी	333
विलायती मेंहदी	336
मोखा	337
मोखा नं0 2	338
मोंगरा	339
मोटा तरवड	340
मोंठ	340
मोथा (नागर)	342
मोथा (भद्र)	346
मोदिर कान्नी	347
मोरंग इलायची	348
मोरपंखी	348
मौलसिरी	350
बड़ी मौलसिरी	352
मंगुस्तान	352
मण्डूकपर्णी	353

बरना (Crataeva Religiosa)

वटादिवर्ग एवं अपने वरुणकुल[1] (Capparidaceae) के प्रमुख, इस बड़े 15–30 फुट ऊँचे वृक्ष की शाखायें फैली हुई, अनेक एवं शुभ्रवर्ण के रेखाकृति चिह्न युक्त, छाल–चिकनी, धूसर वर्ण की, आधी इंच मोटी, अनुप्रस्थ (बेड़े) दिशा में चीरों से युक्त, पत्र–शाखाओं के निम्न भाग पर 2–4 इंच लम्बी डण्डियों पर, बेल पत्र जैसे त्रिदल युक्त लगभग 2–6 इंच लम्बे, 1½ इंच चौड़े बर्छी के आकार के, पत्रवृन्त–एरण्ड के वृन्त जैसे लम्बे, पत्रक अण्डाकार, उदर भाग में हरे, पृष्ठ भाग में श्वेताभ, तीक्ष्णाग्र युक्त, मसलने पर एक प्रकार की तीक्ष्ण गन्ध युक्त, पुष्प–वसंत ऋतु में नीलाभश्वेत 2–3 इंच लम्बे (श्वेत गुलतुर्रा जैसे) सुगन्धित; फल–नीबू, जैसे 1½ इंच व्यास के, पकने पर लाल रंग के हो जाने वाले, भीतर की मज्जा पीताभ, बीज–मज्जा में लिपटे हुए, छोटे, चिकने, टेढ़े–मेढ़े, पिंगल वर्ण के होते हैं। वृक्ष का काष्ठ भाग पीताभ श्वेत, साधारण कड़ा होता है।

इसके वृक्ष भारत में प्रायः सर्वत्र विशेषतः मध्य भारत, बंगाल, आसाम, मलाबार, कर्नाटक आदि में स्वयंजात अधिक पाये जाते हैं। दक्षिण में जलीय स्थानों में अधिक होते हैं।

नोट–(1) इसके पत्र, पुष्प व कच्चे फलों का स्वाद तिक्त (कड़ुआ) होता है। फ़ल पकने पर किंचित मधुर हो जाते हैं। महाराष्ट्र की ओर ग्रीष्म ऋतु में इसके नूतन कोमल पत्रों का तथा फूलों का शाक बनाया जाता है। इनमें कड़ुआपन अधिक होने से प्याज मिलाया जाता है।

नोट–(2) सुश्रुत के वरुणादि, वाताश्मरी, कफाश्मरी नाशक गुणों में इसकी प्रधानता है।

नोट–(3) कोई कोई चिरईगोड़ा बूटी को ही भ्रमवश बरुन (बरना) मानते हैं। चिरईगोड़ा का प्रकरण भाग 3 में देखिये।

नोट–(4) बाजारों में देखा गया है कि पंसारी लोग इसके स्थान में बेल के पत्र और छाल दे देते हैं या असली बरना में बेल पत्रादि मिलाकर देते हैं। अतः परीक्षा कर के लेना चाहिये। इसके पत्रों को मसलने से तीक्ष्ण, तीव्र असहनीय गन्ध आती है तथा स्वाद में कड़ुआपन जीभ में कुछ झनझनाहट पैदा करने वाली तीक्ष्णता। छाल आदि का वर्णन ऊपर कहा गया है। तदनुसार परीक्षण करके ही इसे लेना उपयुक्त होता है। अन्यथा कोई लाभ नहीं होता।

वरुण (बरना)
(CRATAEVA RELIGIOSA, FORST)

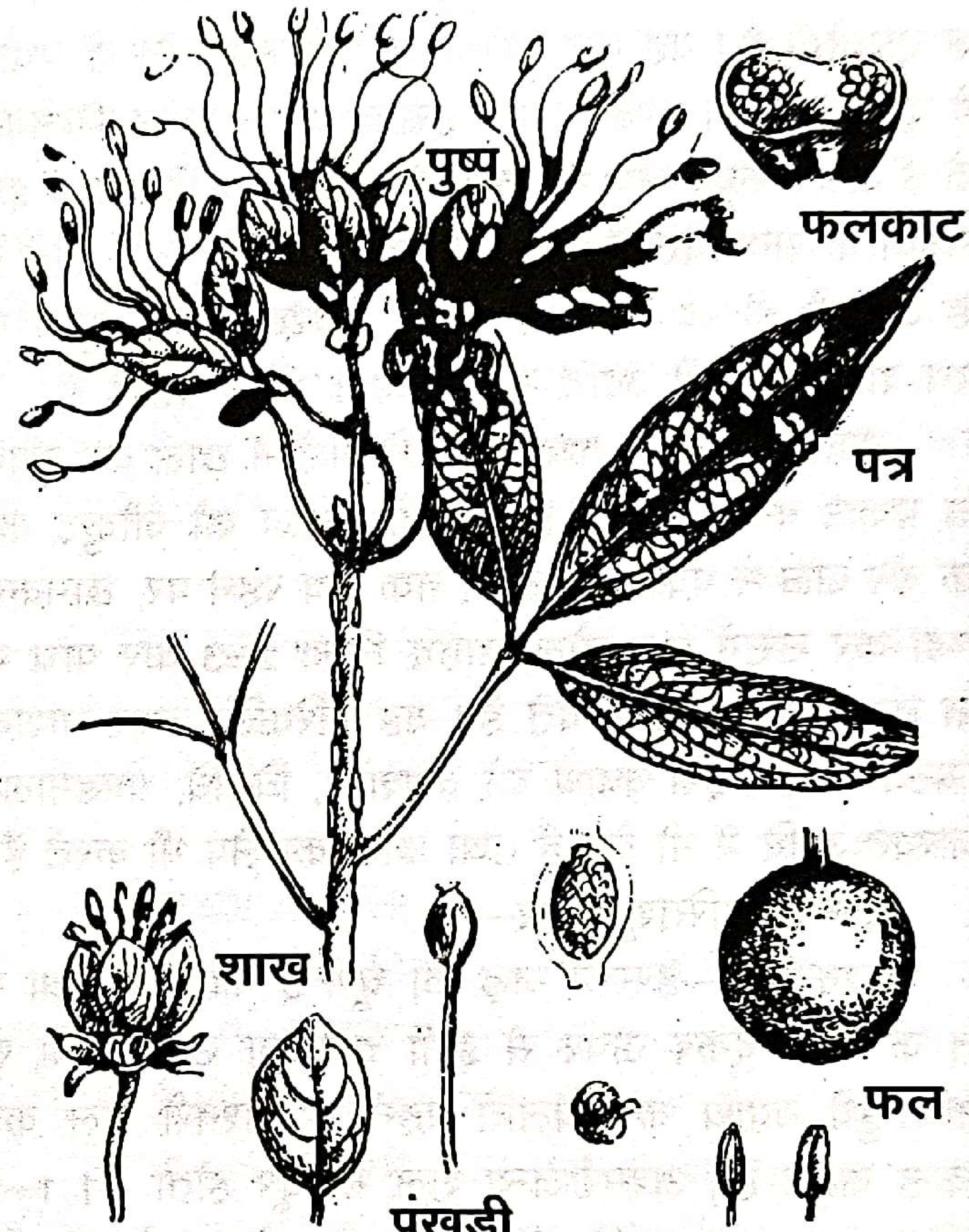

नाम :

सं0–वरुण, वरण, कुमारक, अश्मरीघ्न, तिक्तशाक, हि0–बरना, बरुणा, बिदासी, बिलिआना इ., म0–वायवरना, हाड़वर्णा, गु0–बरनो, कागड़ाकेरी, बं0–वरुण, तिक्तोशाक, अं0–थ्री लीव्हड़ केपर (Three leaved caper), होली गार्लिक पियर (Holy garlic pear)। ले0–क्रेटेव्हा रिलिजिओसा क्रेटेव्हानुरबाला (Crataeva Nurwala), क्रे0 राक्सबर्घी (C. Roxburghii)।

रासायनिक संगठन :

इसकी छाल में एक साबुन जैसा सेपोनिन (Saponin) सत्व पाया जाता है। छाल के अर्क या टिंचर से तेल का दुग्धीकरण (Emulsion) होता है।

प्रयोज्यांग–छाल, मूल, पत्र, फल, पुष्प।

गुणधर्म व प्रयोग :

लघु, रूक्ष, तिक्त, मधुर, कषाय, कटुविपाक, उष्णवीर्य, प्रभाव में भेदन है। दीपन, अनुलोमन, कफवात शामक, पित्तवर्धक, कटुपौष्टिक, पित्तसारक, रक्तशोधक, मूत्रल, अश्मरी भेदक तथा अग्निमांद्य, शूल, गुल्म, वातविकार, यकृत एवं

1. इस कुल के वृक्ष के पत्र एकाकी या संयुक्त, एकान्तर द्विबीजपर्ण, विभक्त दल पुष्प बाह्य कोष के तथा आभ्यन्तर कोष के दल 4–4 स्त्री केशर नलिका बहुत छोटी अधःस्थ बीज कोष युक्त होते हैं।

प्लीहा विकार, कृमि, ज्वरादि में प्रयुक्त होता है।

छाल–दीपन, पाचन, बल्य, मृदुविरेचक व अश्मरीघ्न है। इसकी छाल की क्रिया मूत्राशय पर विशेष रूप से होती है। अश्मरी, बस्तिशूल, मूत्रकृच्छ्रादि पर यह पुनर्नवा, गोखरू, अपामार्ग, जवाखार, मुलैठी आदि मूत्रल द्रव्यों के साथ दी जाती है। ज्वर तथा त्वचा के कुछ साधारण विकारों पर भी यह उपयोगी है। यह वमन निवारक एवं जठराग्नि के प्रदाह को दूर करती है। गण्डमाला में इसका क्वाथ शहद मिलाकर देते हैं और इसका लेप भी करते हैं। शोथ या विद्रधि में इसे पुनर्नवा के साथ देते हैं। मूल की छाल विशेष मूत्रल होने से यह अकेली ही या गोखरू, काली सारिवा आदि द्रव्यों के साथ शोथ, अश्मरी आदि मूत्र विकारों में दी जाती है।

उक्त विकारों में तथा अन्य विकारों में छाल का क्वाथ इस प्रकार बनाया जाता है–10 तो0 छाल को जौकुट कर एक सेर जल में पका, 50 तोला तक शेष रहने पर, छानकर, ठण्डा कर उसमें एक तोला शहद मिला 2–3 बार पांच से दस तोला की मात्रा में देते हैं। यह परिवर्तित ज्वर नाशक व बल्य भी है। इस क्वाथ को व्रणशोथ, विद्रधि, गण्डमाला, वातरक्त आदि में भी देते हैं तथा छाल का लेप भी करते हैं।

अश्मरी, बस्तिशूल पर–

अश्मरी पर–इसकी जड़ का चूर्ण 3 मा0 की मात्रा में घृत के साथ देकर ऊपर से इसी चूर्ण का उक्त विधि से बनाये हुये क्वाथ को पिलाते रहने से अश्मरी गल कर निकल जाती है। अश्मरीजन्य शूल भी दूर होता है। 1–1 घण्टे पर 3–4 बार देने से अश्मरी का भेदन होकर शूल शमन होता है अथवा इसकी छाल के साथ गोखरू व काली सारिवा समभाग मिला 4–4 तो0 का क्वाथ कर 3–4 बार पिलावें। —गां0 औ0 र0

वातज अश्मरी हो तो–छाल के साथ सोंठ, गोखरू समभाग मिला क्वाथ कर 2½ से 5 तो0 की मात्रा में थोड़ा जवाखार 1 मा0 और 1 तोला गुड़ मिलाकर सेवन करावें। जीर्ण वातज अश्मरी नष्ट होती है। अथवा–वृहद्‌वरुणादिक्वाथ–प्रयोग देखिये आगे विशिष्ट योगों में। भै0 र0

अथवा लघुवरुणादिक्वाथ–इसकी छाल के साथ पाषाणभेद, गोखरू, कुलथीबीज, समभाग के क्वाथ में जवाखार 1 मा0 मिलाकर सेवन करें। यह अश्मरी भेदक है।

अथवा–इसकी छाल का क्षार (क्षार–विधि आगे विशिष्ट योगों में देखिये) 1 भाग में जवाखार ½ भाग तथा गुड़ ¼ भाग एकत्र मिलाकर इन सबको ¼ भाग घृत में मिलाकर रख लें। मात्रा 1 तो0 उष्णजल के साथ सेवन से कष्टसाध्य अश्मरी भी नष्ट हो जाती है। —बं0 से0

अथवा–छाल के क्वाथ में केवल गुड़ 1 तो0 मिलाकर या क्वाथ में छाल के 3 मा0 चूर्ण को मिलाकर पीने से भी अश्मरी निकल जाती है तथा बस्तिशूल नष्ट होता है–ग0 नि0, भै0 र0। कफज अश्मरी हो तो इस क्वाथ में जवाखार मिलावें।

अथवा छाल की राख को पानी में घोलकर कई बार छानकर रख दें। फिर ऊपर का स्वच्छ जल निथार कर उसमें इसी की छाल का महीन चूर्ण और जवाखार मिलाकर पकावें। जब शुष्क चूर्ण हो जाय तो उसे निकाल कर गुड़ के साथ सेवन से घोरतर पत्थर जैसी कड़ी एवं पीड़ादायक अश्मरी और अग्निमांद्य का नाश होता है। —बं0 से0

नोट–ध्यान रहे उक्त प्रयोग वातज या कफज अश्मरी पर ही किये जाते हैं। पित्तज अश्मरी पर नहीं। कारण बरना स्वयं पित्त प्रदायक है। आगे विशिष्ट योगों में वरुणादि घृत का योग देखें।

(2) गण्डमाला या गलगण्ड, विद्रधि, अण्डवृद्धि, शोथ युक्त वेदना तथा जलोदर व व्यंग पर–

इसकी छाल तथा कचनार दोनों की एकत्र छाल के क्वाथ में शहद मिलाकर प्रातः सायं 3–4 महीने तक पिलाने और इसकी छाल का लेप करते रहने से रक्त शोधन होकर गलगण्ड (Goitre) तथा नूतन गण्डमाला दूर हो जाती है। इससे चिरकालीन गण्डमाला में भी लाभ होता है। —गां0 औ0 र0

विद्रधि पर–विद्रधि की अपक्वावस्था में इसके मूल या मूल की छाल का क्वाथ लाभदायक है।

कफज विद्रधि हो तो–छाल के साथ त्रिफला, सेंहजना की छाल और दशमूल मिला क्वाथ बनाकर उसके साथ शुद्ध गूगल का सेवन प्रशस्त होता है।

अन्तर्विद्रधि–छाल के क्वाथ में कसीस, सेंधानमक, शिलाजीत और हींग का चूर्ण मिलाकर सेवन से प्रवृद्ध अपक्व अन्तर्विद्रधि नष्ट होती है। —ग0 नि0, यो0 र0

नोट–अन्तर्विद्रधि,, गुल्म, मेद आदि पर विशिष्ट योगों में वरुणादि क्वाथ देखिये।

अण्डवृद्धि पर–छाल के साथ बन्दा, दशमूल और शतावर समभाग लेकर क्वाथ बनालें। सेवन से विशेषतः वातज अण्डवृद्धि में लाभ होता है। —हा0 सं0

शोथ पर–आभ्यन्तरिक दाह एवं पूययुक्त शोथ (यह भी अन्तर्विद्रधि है) इसकी छाल 5 भाग और पुनर्नवा मूल 2 भाग जौकुट कर अष्टमांश क्वाथ सिद्ध कर 1½ से 2½ तो0 या 5 तो0 तक की मात्रा में पिलाते हैं। इससे अण्डकोष के शोथ पर भी लाभ होता है। —नाड़कर्णी

साधारण दर्द और शोथ या वेदनायुक्त शोथ पर–जड़ की छाल का रस निकालकर समानभाग मीठे तेल (तिल या

अलसी तैल) में मिलाकर पकावें। तेल मात्र शेष रहने पर रखलें। इसके मलने से लाभ होता है।

—डॉ0 महाराव महेन्द्रसिंह वैद्य, मेरठ

जलोदर पर—इसकी जड़ की छाल, गोखरू और सोंठ एकत्र मिला क्वाथ कर, उसमें शहद व जल मिलाकर सेवन कराते हैं।

व्यंग तथा नीलिका पर—'इसकी छाल को बकरी के मूत्र में पीसकर (कोई बकरी के दूध में पीसते हैं) लेप करने से व्यंग (चेहरे की झाई) दूर हो जाती हैं। —भा0 प्र0

देह के अन्य भाग पर उत्पन्न व्यंग (नीलिका) पर भी यह प्रयोग लाभदायक है।

(3) वातव्याधि, आमवात, कासश्वास, ज्वर में—चित्तभ्रम होने पर—वात व्याधि— (वरुणादि स्वेद) इसकी छाल के साथ दोनों प्रकार की एरण्डी छाल, मुण्डी (गोरखमुंडी), सेंहजना की छाल, शतावर, गोखरू और सरसों एकत्र मिलाकर किये हुये क्वाथ की भाप (वाष्प) या बफारा देने से वात व्याधि नष्ट होती है। —ग0 नि0

वात वेदना में—जड़ की छाल के साथ सेंहजने की छाल को कांजी में पीसकर लेप करते हैं।

आमवात (गठिया) पर—जड़ की छाल (या छाया शुष्क ताजे पत्तों) का चूर्ण 3 या 4 माशे की मात्रा में घृत के साथ देते हैं। अथवा ताजे पत्रों का रस इस घृत के साथ देते हैं। जीर्ण आमवात में भी शीघ्र लाभ होता है।

कास पर—इसकी ताजी छाल 2 तोला कूटकर 1 सेर जल में पकावें। 20 तोला जल शेष रहने पर उसमें 1 माशा सेंधानमक या 2 तोला खांड मिलाकर प्रातःसायं पिलाने से हर प्रकार की खांसी दूर हो जाती है।

—डा0 महाराव महेन्द्र सिंह जी वैद्य, मेरठ

ज्वर में भ्रम (चक्कर आना) की विशेषता हो तो छाल को पीसकर सिर पर बांधने से बंधन स्थान में दाह होकर भ्रम के दूर हो जाता है। रोगी शुद्धि पर आने के बाद बंधन को खोलकर, उस स्थान को शीतल जल से धोकर वहां तैल का लेप करें, जिससे छाला न होवे। —संकलित

पत्र प्रयोग—

(4) अर्श—आंत्रशोथ, आमवात, प्लीहावृद्धि तथा स्त्री रोग पर—अर्श—इसके पत्तों के क्वाथ में अर्श वाले रोगी को बैठाने से (उसकी कमर तक क्वाथ का जल आजावे इस प्रकार बैठाना) अर्श जन्य तीव्र वेदना शीघ्र शमन होती है।

आंत्र शोथ पर—इसके पत्रों के साथ पुनर्नवा (विषखपरा) के पत्र समभाग 1—1 तोला लेकर कूटकर 40 तोला जल में पकावें। 10 तोला शेष रहने पर छानकर पिलाने से आंतों की सूजन दूर होती है।

—डा0 महाराव महेन्द्र सिंह जी वैद्य, मेरठ

आमवात (गठिया, संधिवात) पर—पत्र स्वरस ½ से 3 तोला तक लेकर उसमें नारियल का तेल (कोई नारियल का दूध लेते हैं) और घृत (दोनों 1 तोला) मिलाकर सेवन कराते तथा एक कपड़े की पोटली में पत्रों को तथा छाल को बांधकर सेंक करते हैं।

प्लीहावृद्धि पर—ताजे कोमल पत्रों को हाथों से मसलकर रस निकाल कर प्लीहा स्थान पर—नित्य मर्दन करते रहने से कुछ दिनों में वृद्धि दूर हो जाती है। —संकलित

स्त्री रोग—शरीर के जिस स्थान पर केशादि को नष्ट करने वाले किक्किस नाम के कृमि विशेष हों तथा तज्जन्य त्वचा का लाल हो जाना, ददोरे उठना, खुजली आदि की विशेषता हो, तो प्रथम रोग स्थान पर गाय का गोबर मलकर जल के साथ पीसे हुए इसके पत्रों को खूब मलने से स्त्रियों का यह किक्किस रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

—भा0 भै0 र0

योनिकण्डु—प्रथम खुजली वाले स्थान को गोबरी से घिसें; या गाय के ताजे गोबर से मलकर इसके पत्रों का स्वरस लगाने से योनि की खुजली दूर हो जाती है। इस प्रयोग से उस स्थान की त्वचा में दाह होने लगे तो थोड़ा घृत या नारियल का तेल लगावें।

(5) कास, श्वास, निमोनिया तथा भ्रम विकार पर—इसके पत्रों की राख में दो गुना शहद मिलाकर, 1 तोला की मात्रा में चटाने से हर प्रकार का कास व श्वास दूर हो जाता है।

अथवा—इसके पत्रों तथा लकड़ी को जलाकर राख बना कपड़ छानकर समभाग खांड मिलालें। 6—6 माशा की मात्रा में प्रातःसायं गरम जल से देने से हर प्रकार की खांसी दूर होती है।

निमोनिया (वातकफोल्वण सन्निपात ज्वर, श्वसनक ज्वर)—इसके 2 तोला हरे ताजे पत्रों को या 12 माशा शुष्क पत्रों को 40 तोला जल में मिलाकर पकावें। 10 तोला शेष रहने पर नीचे उतार छानकर उसमें 2 रत्ती सेंधानमक मिला पिलावें। इसी प्रकार दिन में 3 बार पिलाने से लाभ होता है। साथ ही साथ—इसके ताजे पत्रों को कूटकर निकाले हुए 1 सेर रस में 40 तोला मीठा तेल मिलाकर पकाकर तेल मात्र शेष रहने पर छान कर शीशी में रख लें। निमोनिया रोगी की छाती पर इस तेल को मलकर ऊपर से रुई को गरम कर बांध दिया करें। —डा0 महाराव महेन्द्रसिंह वैद्य, मेरठ

भ्रम विकार (वातजन्य भ्रम) पर—पत्रों को महीन पीसकर मस्तक पर वस्त्र को चौघड़ी कर वेष्टन देकर, बीच में पीसे हुए पत्रों के कल्क को रख बांध देवें। जब तक मस्तक में वात का विकार होगा दाह या जलन प्रतीत नहीं होगी, वातविकार के दूर होते ही दाह होने लगेगी, तब वेष्टन को

तथा कल्क को हटा कर उस स्थान पर नारियल का तेल चुपड़ देवें। —ब0 गु0

(6) कर्ण रोग, नासिका का विकार, हाथ पैरों की दाह व मेदा रोग पर—कर्ण रोग—(पूतिकर्ण, कान में दुर्गन्ध युक्त एवं पूय युक्त व्रण होने पर)—(तेल) इसके पत्रों के साथ आक, कैथ, आम और जामुन के पत्र समभाग 1—1 सेर लेकर एकत्र कूट कर 40 सेर जल में पकावें। 10 सेर शेष रहने पर छान लें। इसमें उक्त पांचों प्रकार के पत्र 5—5 तोला लेकर पीसकर कल्क बना कर डाल दें तथा 2½ सेर तेल मिला मन्दआग पर पकावें तेल मात्र शेष रहने पर छानकर रख लें। इसे कान में डालने से कान से पूय स्राव होना आदि बन्द हो जाता है। —वृ0 मा0

नासिका विकार—नाक की हड्डी में क्षत हुआ हो, उसमें सड़ान पैदा हुई हो तो इसके पत्रों की बीड़ी बना या चिलम में रखकर धूम्रपान कर, धूम्र को नाक के रास्ते से निकालते रहने से (लगभग 14 दिन में) क्षत भर जाता है, कृमि नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार का इसका धूम्रपान मस्तिष्कान्तर्गत व्रण में भी लाभकारी है।

हाथ पैरों की जलन (दाह) एवं सूजन पर—पत्रों को बांधने या घिसने से जलन शीघ्र ही दूर हो जाती है। सूजन हो तो पत्रों को पीसकर गरमकर लेप करते हैं।

मेद रोग (स्थूलता) पर—इसके ताजे पत्रों तथा कोमल जड़ों के महीन टुकड़े कर, नारियल का दूध और घृत मिला, साग जैसा पकाकर खाते रहने से; अथवा केवल पत्रों का शाक प्रतिदिन नियमपूर्वक दो महीने तक खाते रहने से मुटापा दूर हो जाता है। —नाड़कर्णी

त्वचा पर छाला या फफोला उठाने के लिए—इसके ताजे पत्र को सिरके के साथ या नीबू रस के साथ या गरम पानी के साथ पीसकर त्वचा पर जहां छाला उठाना हो, पुल्टिस जैसा गाढ़ा लेप करने से प्रथम 5 से 15 मिनटों में त्वचा लाल हो जाती है और थोड़ी देर तक लेप को रखने से छाला उठ आता है। —नाड़कर्णी

इसी प्रकार इसकी छाल के लेप से भी फफोला उठाया जा सकता है।

फल—सारक, गुरु, मधुर, उष्णवीर्य, मधुर, विपाकी, वातहर, कफघ्न, यकृत प्लीहा वृद्धि, आमवात आदि में उपयोगी है।

(7) श्वास कास पर—इसके ताजे फलों को कूट कर, रस निकाल उसमें समभाग खांड़ मिलाकर आग पर शहद के समान शर्बत बना लेवें। मात्रा—6 मा0 शर्बत में 5 तोला गरम जल मिला प्रातः तथा इसी प्रकार सायं पिलाने से श्वास कास में लाभ होता है। यदि यह शर्बत दिन में 3 बार 10 तोला जल में मिलाकर यक्ष्मा (टी0 बी0) में दिया जावे, तो उसमें भी लाभ होता है।

—डा0 महाराव महेन्द्र सिंह वैद्य, मेरठ

(8) व्रणों पर—कच्चे फलों की पुल्टिस बनाकर बांधने से शीघ्र ही व्रण पाक होता है।

पुष्प—इसके पुष्प संकोचक तथा रक्तदोष नाशक हैं।

गोंद—बरना के वृक्ष से जो गोंद निकलता है वह विष विकार एवं रक्त दोष नाशक है। नेत्रों में यदि भूल से किसी विष के लग जाने से दाह तथा अश्रुस्राव आदि लक्षण हों, तो गोंद को जल में घिसकर आंजने से लाभ होता है।

—गां0 औ0 र0 1

नोट—मात्रा—छाल का क्वाथ 2 से 10 तोला तक। पत्र स्वरस ½ से 2½ तो0 तक। छाल या पत्तों का चूर्ण 3—4 माशा। क्षार 1 माशा (घृत के साथ)। भस्म 3—6 माशा तक।

विशिष्ट योग :

वरुणादि क्वाथ—बरने की छाल, अगस्ति या (मौलश्री) पुष्प, बेल की छाल, अपामार्ग, चित्रक मूल, दोनों प्रकार की अरणी की छाल, दोनों सहेंजने की छाल, छोटी व बड़ी कटेरी, तीनों (श्वेत, पीली व नीली) कटसरैया (पियाबांसा), मूर्वा, मेढ़ासिंगी, चिरायता, काकड़ासिंगी, कुन्दरु, करंज और शतावर (ये सब वरुणादिगण के द्रव्य हैं) समभाग पर क्वाथ कफ, मेद, गुल्म, शिरःशूल और अन्तर्विद्रधि नाशक है।

—शा0 सं0

नोट—यह क्वाथ उदर की विद्रधि पर उत्तम कार्य करता है। इसमें चित्रक के स्थान में हमने पुनर्नवा मूल लेकर नित्य 2½ तोला जौकुट किये हुए चूर्ण का 40 तो0 जल में अष्टमांश क्वाथ सिद्ध कर आधा—आधा 2 बार 1—1 चम्मच शहद मिलाकर सेवन कराया है। इससे लगभग 21 दिन में उदर की शोथसहित विद्रधि नष्ट हो गयी तथा शरीर का ज्वरांश भी दूर हो गया। फुफ्फुस की अन्तर्विद्रधि में भी इससे लाभ होते देखा गया है।

—सम्पादक

वरुणादि क्वाथ नं0 2 (बृहद्वरुणादि क्वाथ)—बरुण छाल, सोंठ, गोखरू बीज, मूसली, कुलथी बीज तथा कुशादि पंच तृण मूल (कुश, कास, दर्भ, मूंज व ऊख की जड़) और पाषाण भेद इनके एकत्र जौकुट किये हुए 2 तोला चूर्ण को 32 तोला जल में चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर, छानकर उसमें खांड़ 1 तोला और जवाखार 1 माशा मिलाकर सेवन कराने से अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र तथा इन रोगों से उत्पन्न बस्तिशूल और मूत्र के समय होने वाला शिश्नशूल नष्ट होता है। यह क्वाथ अश्मरी को फोड़कर निकाल देता है। —भै0 र0

(2) वरुण फाण्ट—इसके ताजे शुष्क पत्र चूर्ण 1 भाग

में 10 भाग उबलता हुआ जल मिलाकर ढंक देवें। ठण्डा होने पर छान लेवें। यह फाण्ट कड़वा एवं सुगन्धित होता है। मात्रा–5 से 10 तोला। यकृत प्लीहा वृद्धि में तथा अजीर्ण में दिन में 2–3 बार सेवन से अपचन, आध्मान दूर होता और वमन बन्द होती है। अन्तर्विद्रधि में उक्त प्रकार से ही इसकी जड़ या जड़ की छाल का फाण्ट बनाकर दिन में 3 बार पिलाने से विशेषतः अपक्व विद्रधि दूर हो जाती है।

(3) अर्क वरुण–(यक्ष्मा नाशक) छाया शुष्क इसकी छाल या पत्र 4 सेर, गिलोय 2¼ सेर, बनफ्शा पुष्प 1-1/8 सेर, शाहतरा, चिरायता व गाजवां पुष्प 1/8-1/8 सेर, मुलहठी 45 तोला, खूबकला 15 तोला, इन सबको कूटकर एकत्र मिलाकर 3 भाग कर लेवें। प्रथम इसमें से 1 भाग को 30 सेर जल में रात्रि को भिगो, प्रातः भवके से 30 बोतल अर्क खींच लें। फिर इस अर्क में उक्त दूसरा भाग रात्रि के समय भिगो प्रातः 20 बोतल अर्क खींच लें। अब इस अर्क में उसी प्रकार तीसरा भाग मिला प्रातः 15 बोतल अर्क निकाल कर सुरक्षित रखें। प्रतिदिन में 4 बार 5–5 तोला अर्क पिलाने से 15 दिन में यक्ष्मा (T. B.) दूर हो जाती है।

अर्क नं0 2–इसके पत्र 1 सेर तथा जड़ की छाल, मुण्डी, चिरायता व सत्यानाशी मूल आधा आधा सेर लेकर कूटकर रात्रि को 30 सेर जल में भिगो प्रातः 30 बोतल अर्क खींच लेवें। 5–6 तोला अर्क दिन में 3 बार पिलाने से सर्व प्रकार के रक्त दोष, विबन्ध, कंठमाला आदि रोग नष्ट हो जाते हैं। –श्री डा0 महाराव महेन्द्रसिंह जी

भारत वैद्य H.M.D.S., खारी कुआ, मेरठ शहर

(2) वरुणासव–इसके पत्र 5 सेर लेकर एक मन जल में भिगोकर प्रातः भवके द्वारा 40 बोतल अर्क निकाल कर उसमें इसके हरे ताजे पत्र व फल 1–1 सेर, बनफ्शा ¼ सेर, केंकड़ा नहरी 5 तोला तथा बांसापत्र, बांसा पुष्प, धाय पुष्प 20–20 तोला, चीनी 2 सेर मुनक्का आधा सेर, शहद 2 सेर सबको एकत्र मिलाकर एक चीनी मिट्टी के बड़े पात्र में भर कर मुख बन्दकर रख दें। 30 दिन बाद खोलकर, छानकर बोतलों में भर रख दें।

मात्रा–2–2 तोला दिन में तीन बार सम भाग जल मिलाकर सेवन से हर प्रकार की खांसी, ज्वर, श्वास आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

–डॉ0 महाराव महेन्द्र सिंह वैद्य, मेरठ

नोट–आसवारिष्ट के अन्य योगों के लिये हमारा बृहदासवारिष्ट संग्रह ग्रन्थ देखिये।

(5) वरुणादि घृत–बरने की छाल 5 सेर को जौ कुटकर 12 सेर 64 तो0 जल में पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर उसमें बरने की छाल, केले की जड़, तृण पंचमूल (कुस, कास, शर, दर्भ व ईख इन पांचों की जड़ें) गिलोय, शिलाजीत खीरे के बीज, बांस की जड़, तिलक्षार, पलाश क्षार और जूही की जड़ 1–1 तोला सबको पीसकर बनाया हुआ कल्क मिलाकर 1 सेर घृत में मन्दाग्नि पर पकायें। घृत मात्र शेष रहने पर छानकर रख लेवें। इसे देश तथा काल आदि की विवेचनापूर्वक आधा से 1 तोला तक की मात्रा में सेवन कराने से अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्रादि रोग नष्ट होते हैं। इसे सेवन करने के बाद उसके पचजाने पर अन्य किसी पदार्थ के खाने से पूर्व मस्तु, (दही के घन भाग को अलग करने पर जो पतला पानी सा भाग निकलता है उसे मस्तु या दही का तोड़ कहते हैं), के साथ पुराना गुड़ खाना चाहिये। –भै0 र0

घृत नं0 2–वरुणादि गण के द्रव्य तथा गूगल, इलायची, रेणुका, कूठ, नागरमोथा, कालीमिरच, चित्रक व देवदारु समभाग मिश्रित 1 सेर लेकर सबका कल्क बना कर 7 सेर बकरी के दूध में यह कल्क तथा इन्हीं उक्त सब द्रव्यों का क्वाथ मिलाकर सिद्ध किया हुआ घृत कफज अश्मरी को नष्ट करता है। मात्रा–6 से 8 बूंद। –भै0 र0

घृत नं0 3–वरुणादि गण के कल्क और क्वाथ के साथ सिद्ध किया हुआ घृत, प्रातः भोजन के समय और रात्रि के समय (अथवा दिन में 3 बार) आधा से 1 तो0 तक की मात्रा में सेवन से अन्तर्विद्रधि, शिरोवेदना, अग्निमांद्य और पांच प्रकार के गुल्म नष्ट होते हैं। –भै0 र0

(6) वरुणादि तैल–बरने की छाल, पत्र, पुष्प व जड़ तथा गोखरू एकत्र 7 सेर जौकुट कर 64 सेर जल में पकावें। 16 सेर शेष रहने पर छानकर इसे 4 सेर तिल तैल में मिला, मन्द आग पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान लेवें। इस तैल का प्रयोग बस्ति (आस्थापन) द्वारा करने में शर्करा, अश्मरी शूल व मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है। –भै0 र0

(7) वरुणक गुड़पाक–उत्तम स्थान में उत्पन्न, कृमियों से न खाये हुए, तरुण एवं स्निग्धता युक्त बरना वृक्ष की 2½ सेर छाल, शुभ दिन, शुभ मुहूर्त में लाकर जौकुट कर 20 सेर जल में पकावें। 5 सेर जल शेष रहने पर, छान कर उसमें 5 सेर गुड़ मिलाकर पकावें। गाढ़ी चासनी हो जाने पर उसमें सौंठ, ककड़ी के बीज, गोखरू, पिप्पली पाषाणभेद, दूर्बा, पेठे के बीज, खीरे के बीज, कमलगट्टे, धनियां, बथुआ के बीज (अभाव में बथुआ का मूल), सेंहजने की छाल, मुनक्का, छोटी इलायची, शिलाजीत, हरड़ व बायबिडंग प्रत्येक का चूर्ण 4–4 तोला मिलाकर पाक जमा देवें या मोदक बना लें। 1 तोला से 5 तोला तक की यथोचित मात्रा में प्रतिदिन पथ्यपूर्वक सेवन से समस्त दोषजन्य अश्मरी

शीघ्र ही निकल जाती है। —भा० प्र०

नोट—पाकों के उत्तमोत्तम प्रयोग हमारे (बृहत्पाक संग्रह) ग्रन्थ में देखिये।

(8) वरुणादि लोह—बरना की छाल तथा आमला 7—7 तोला, धाय के पुष्प 4 तोला हरड़ 2 तोला, पृश्निपर्णी (पिठवन मूल), लोह भस्म, अभ्रक भस्म 1—1 तो० सबके चूर्ण को एकत्र खरल कर रखें। मात्रा 1 से 2 माशा। इसके सेवन से मूत्राघात, दारुण मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, प्रमेह, विषम ज्वर आदि नष्ट होते तथा बल, वीर्य, पुष्टि एवं आयु की वृद्धि होती है।

नोट—श्लेष्मिक मूत्रकृच्छ्र तथा विड्विघातज मूत्रकृच्छ्र में यह विशेष लाभदायक है। —भै० र०

(9) क्षार वरुण—बरना की शाखाओं को या पत्र और छाल को जलाकर राख होने पर उसे जल में घोल कर 3 दिन रखा रहने दें। फिर ऊपर से जल निथार कर कढ़ाई में पकावें। जलांश के दूर हो जाने पर कढ़ाई में लगे हुये क्षार को शीशी में रख लें। यह क्षार 1 माशा की मात्रा में घृत के साथ सेवन से बस्ति की अश्मरी, बस्ति शूल, जलोदर, प्लीहोदर, मूत्र विकार तथा गर्भाशय के विकारों पर विशेष लाभदायक है।

नोट—उक्त राख को इसके ही छाल के क्वाथ में उबालें। जलांश सूख जाने पर उतार कर क्षार को खुरच कर शीशी में भर लें। इस प्रकार का बनाया हुआ क्षार भी उत्तम होता है। —गां० औ० र०

बरबेल—देखो—बेलान्तर। बरमाला—देखो—बरमूला। बरमी—देखो—जलनीम तथा तालीसपत्र में।

बरमूला (बरमाला) (Callicarpa Arborea)

निर्गुण्डी कुल (Verbenaceae) के इस 30—40 फुट ऊँचे वृक्ष की छाल किंचित धूसरवर्ण की, भीतर का काष्ठभाग धूसर व विशेष मजबूत नहीं होता। पत्र डिम्बाकृति 12 इंच लम्बे 6 इंच चौड़े, सूक्ष्म रोम युक्त 8—12सिराओं से युक्त; पुष्प हल्के बेंगनी रंग के, 4 पंखुड़ी वाले, विशेष गंधयुक्त; पुष्पदण्ड 1—2 इंच लम्बा 3—4 शाखायुक्त फल—गोल $\frac{1}{10}$ इंच व्यास के कृष्णाभ बेंगनी रंग का होता है। प्रायः ग्रीष्मकाल में पुष्प व वर्षा के अन्त में फल आते हैं।

इसके वृक्ष छोटा नागपुर, बिहार, उत्तर बंगाल तथा गंगा के उत्तरी मैदानी प्रदेशों में एवं कुमाऊँ से सिक्किम तक की पहाड़ियों पर खसिया और बरमा में विशेष देखे जाते हैं।

नोट—यह प्रियंगु, गन्ध प्रियंगु का ही एक भेद प्रतीत होता है। बरमूला और बरमोलो नामक अन्य पौधों का वर्णन इसी प्रकरण में आगे देखिये।

नाम :

हि०बरमूला, बरमाला। म०—धिवाला, गेहुला। गु०—घिउला। बं० बरमाला, खोजा, मकंची। ले०—केलिकार्पा आर्बोरिया।

गुणधर्म व प्रयोग :

छाल विशेष सुगंधित कडुवी, पौष्टिक, वातपित्त प्रकोपक, आध्मान व चर्मरोग नाशक है।

उक्त विकारों पर प्रायः इसकी छाल के क्वाथ का ही विशेष प्रयोग किया जाता है।

नोट—बरमूला—बनौषधि अनुसंधान योजना (केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय, गुरुकुल कांगड़ी) के नियोजक श्री वैद्य मायाराम उनियाल आयुर्वेदाचार्य A.M.B.S. अपने एक लेख में इस बूटी का लेटिन नाम Mega Carpea Polyandra (Benth) देते हुये लिखते हैं, कि बनस्पति शास्त्र के आधार पर यह राजकादि कुल (Cruciferae) की जड़ 1 से 1½ फुट लम्बी, 1 से 3 इंच तक मोटी, काण्ड 2—4 फुट तक लम्बा, पत्र 1 फुट लम्बे कुछ कटे हुये दन्तुरदार, मसलने पर सरसों के पत्ते जैसे गन्धयुक्त, पुष्प श्वेताभ पीतवर्ण के प्याली की आकृति के होती हैं। पुष्प प्रायः जून—जौलाई में खिलते हैं। खिलने पर उग्र सुगन्ध आती है।

इसके पौधे हिमालय में प्रायः 12 से 14 हजार फुट की ऊँचाई पर टिहरी गढ़वाल में पंबाली कांटा से ताली वाले मार्ग पर—खुले घास के मैदान में उपलब्ध हैं। मैने गंगी पंवाल आदि सीमान्त प्रदेश में रहने वाले ग्रामीण व्यक्तियों को इस बूटी का उपयोग करते देखा है, जिसके परिणाम लाभदायक सिद्ध हुए हैं।

प्रयोज्यांग—मूल, पत्र।

मूल का प्रयोग विशेषतः ज्वरों में मुख्यरूप से विषम ज्वर एवं प्लीहा वृद्धि पर इस प्रकार किया जाता है—मूल 3 या 4 छटांक की मात्रा में लेकर जल से साफ कर कूट कर उसमें 4 से 8 छटांक तक जल तथा सेंधानमक, जीरा, कालीमिरच सोंठ 6—6 माशा मिलाकर मन्द आग पर पका लेते हैं। 7 दिन के प्रयोग से रोगी पूर्ण स्वस्थ हो जाता है।

इसकी पत्तियों का शाक—विबन्ध नाशक है, यह शाक पथ्य रूप में रोगियों को देते हैं। इससे उदरगत विकारों में काफी लाभ होता है। अतः इन प्रयोगों के आधार पर इस बूटी में—दीपन, सारक, ज्वरघ्न आदि गुण विद्यमान हैं।

—धन्वन्तरि से

बरमाला (Callicarpa Arborea Roxb.)

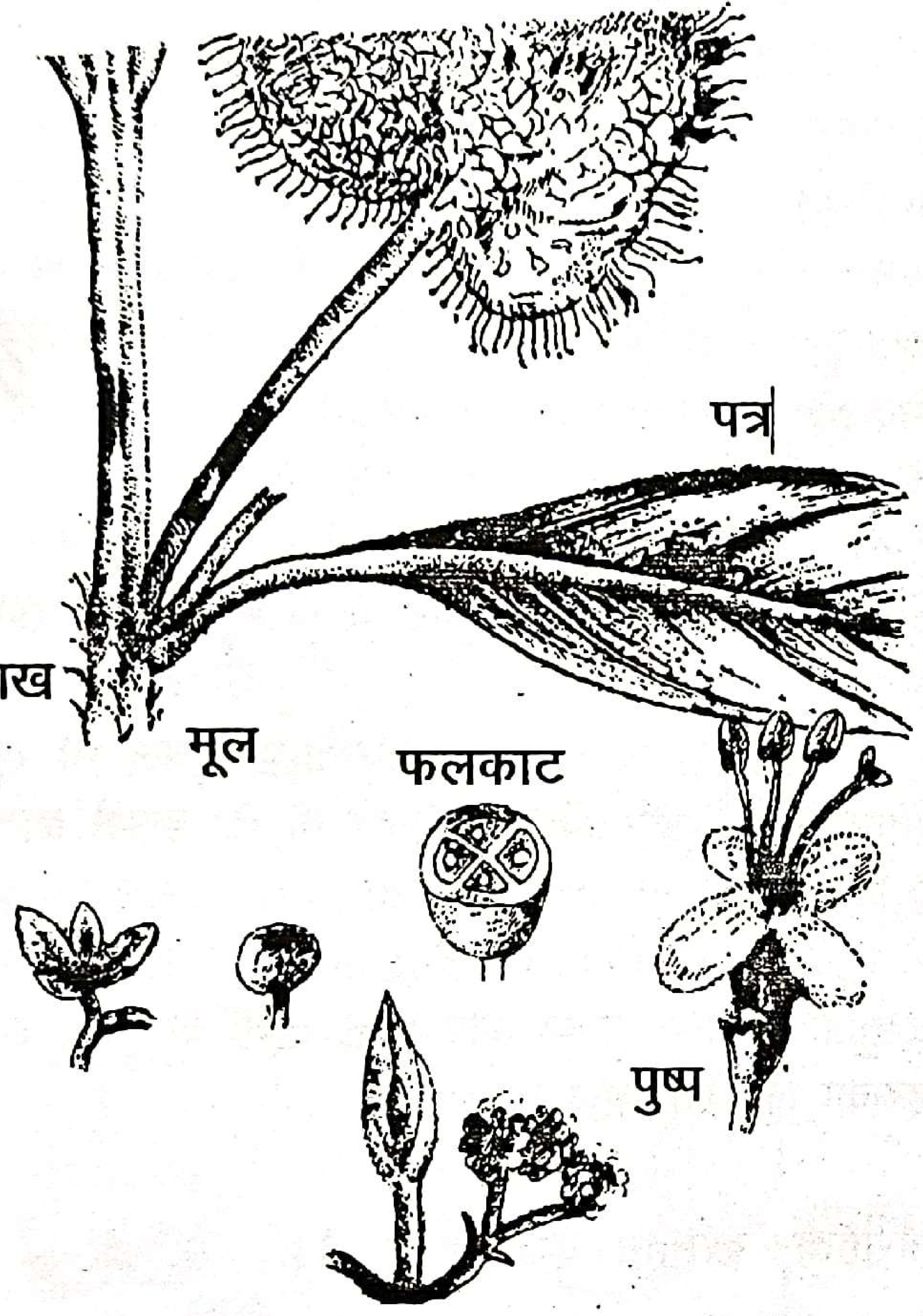

औषधीर्नामरूपाभ्यां जानतेह्यजपावने।
अविपाश्चैव गोपाश्चये चान्येवनवासिनः।।

चo सूo अo 1–118

चरक संहिता की इस उक्ति के अनुसार औषधियों के नाम, रूप, गुण आदि को जंगलों में रहने वाले गोपगण तथा बनवासियों से जाना जा सकता है। इसी आधार पर बरमूला नाम की औषधि का पता टेहरी गढ़वाल के लोगों में प्रचलित है। परन्तु संहिता ग्रन्थ, एवं आयुर्वेदिक निघण्टुओं में इस नाम की औषधि का वर्णन देखने में नहीं मिला है। यहां तक कि विख्यात पाश्चात्य द्रव्यगुण शास्त्रों में भी इस बनौषधि का कोई वर्णन नहीं मिलता है। मैंने गंगी पंवाली आदि सीमान्त प्रदेश में रहने वाले ग्रामीण व्यक्तियों को इस औषधि का उपयोग करते देखा है, जिसके परिणाम लाभदायक सिद्ध हुए हैं।

परिचय :

यह हिमालय में होने वाला एक पौधा है जो कि प्रायः 12 हजार से 14 हजार फुट की ऊँचाई पर पाया जाता है। वन्सपति शास्त्र के आधार पर यह राजिकादि वर्ग (क्रुसीफेरी) की वनस्पति है जिसका मूल 1 से 1½ फुट लम्बा और 1 से 6 इंच तक मोटा होता है। काण्ड 2 से 4 फुट तक लम्बा होता है। पत्र एक फुट लम्बे कुछ कटे हुए दन्तुरदार होते हैं और मसलने पर सरसों के पत्तों की तरह सुगन्ध आती है तथा इन पत्तियों की रचना क्रमानुसार होती है। पुष्प पीले कुछ सफेदी लिए होते हैं। ये पुष्प प्रत्येक पुष्पकाण्ड या (वृन्त) से मिले हुए रहते हैं तथा इनकी आकृति प्याले के समान होती हैं। ये पुष्प प्रायः जून जौलाई में खिलते हैं। खिलने पर उनमें उग्र सुगन्धि आती है।

उत्पत्ति स्थान :

टिहरी गढ़वाल में पंबाली कांटा से ताली वाले मार्ग पर खुले घास के मैदान में करीब 12 हजार फीट की ऊँचाई पर उपलब्ध है।

ग्राह्यअंग–मूल, पत्र।

मूल का आमयिक प्रयोग :

बरमूला मूल विशेषतः ज्वरों में प्रयोग किया जाता है। ग्रामवासी इस बनौषधि का मुख्यरूप से विषम ज्वर एवं प्लीहा वृद्धि में प्रयोग करते हैं। किंवदन्ती के आधार पर औषध निर्माण विधि इस प्रकार से है–

जल से साफ किये हुए बरमूला मूल की 3 या 4 छटांक की मात्रा लेकर उसे कूट लेते हैं, तदुपरान्त उसमें 4 छटांक तक्र, 8 छटांक जल मिला देते हैं। फिर इस मिश्रण में सेंधा नमक, जीरा, कालीमिर्च एवं सोंठ प्रत्येक 6 माशा की मात्रा में मिला देते हैं। इसके पश्चात् इसको मन्द अग्नि पर पका लेते हैं। और शीतल करके दिन में तीन बार रोगी को देते हैं। इस प्रकार से दिन में तीन बार एक सप्ताह तक प्रयोग करने से रोगी को पूर्ण आराम मिल जाता है। इसकी पत्तियों का शाक पथ्य के रूप में रोगियों को देते हैं। जिससे उदरगत विकारों में काफी लाभ मिलता है एवं पत्तियों का शाक विबन्ध को दूर करने में भी लाभदायक होता है अतः इन प्रयोगों के आधार पर इस पौधे में सारक, दीपन, ज्वरघ्न आदि गुण विद्यमान हैं।

बरमोली

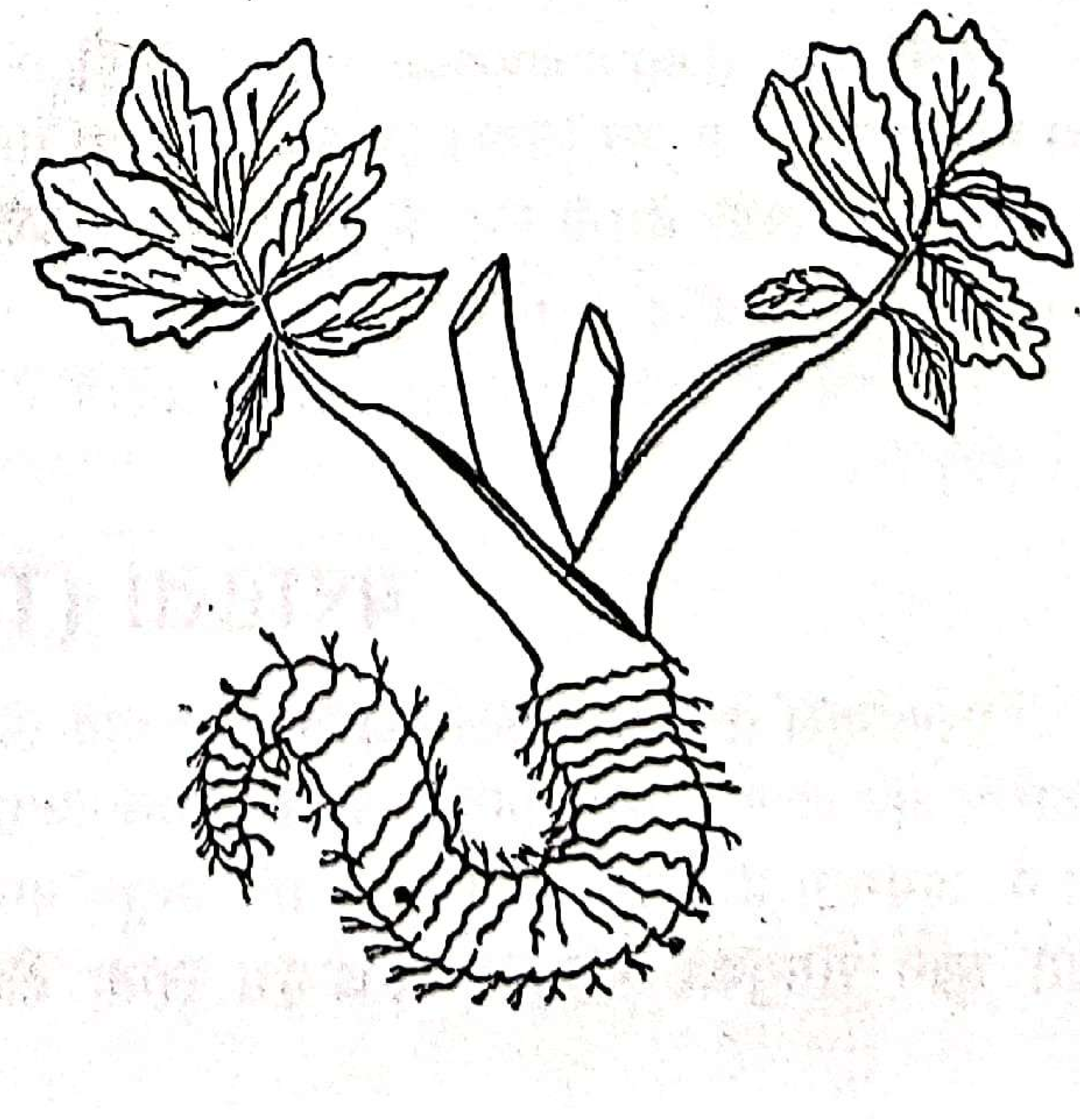

ग्रामीण लोग पशुओं के हित में इसे अचूक औषध समझते हैं। पशुओं के लू लगने पर अथवा बाह्य चर्म के लाल पड़ जाने पर इसके मूल को शीतल जल में भिगो कर देने से लाभ होता है।

सम्भवतः आयुर्वेद शास्त्र में इसका वर्णन आया हो किन्तु काल के प्रभाव से एवं दुष्प्राप्य होने के कारण इस औषधि का प्रचलन न हो सका हो, जो कि धीरे–धीरे अज्ञात सी बन गई हो तथापि किंवदन्ती के आधार पर यह औषधि विषमादि ज्वरों पर अच्छा कार्य कर सकती है जिसके कि मानव वर्ग का कल्याण हो सकता है।

अतः पाठक वर्ग इस औषध का अध्ययन कर अपने चिकित्सा क्षेत्र में इससे लाभ उठाने का विशेषतः प्रयत्न कर सकेंगे।

—श्री वैद्य मायाराम उनियाल
आयुर्वेदाचार्य, ए0 एम0 बी0 एस0
बनौषधि अनुसंधान योजना, केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय
गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार) यू0 पी0

बरमोली :

उक्त बूटी के समान ही एक और बरमोली है। इसका संक्षिप्त वर्णन करते हुए श्री वैद्य सत्यप्रसाद निर्भीक शास्त्री जी ने 'सचित्रआयुर्वेद' में लिखा है कि यह क्षुप जातीय वनस्पति, हिमालय में 8–9 हजार फुट की ऊँचाई पर होती है। बर्फ पिघलने के बाद उगती है तथा वर्षारम्भ में इसकी जड़ परिपक्वावस्था को प्राप्त होती है। जड़ कनखजूर नामक कीड़े के जैसी होती है, जिस पर छल्ले से होते हैं तथा प्रत्येक छल्ले पर जोड़ होती है। जड़ के ऊपर डण्ठल निकलते हैं, जो 2–3 इंच तक छोटी नहर की तरह आलबाल ऊँचे उठे हुये होती है। यह अग्रभाग में बारीक होती है, जिस पर इतस्ततः पत्र नीम पत्र जैसे निकलते हैं। पुष्प श्वेत आते हैं। यह स्वाद में बिल्कुल खीरा की भांति लगती है।

यह गुण में शीतवीर्य, योगवाही, मूत्रल भी खूब है। स्वाद में राई और खीरे की तरह ही है। इससे ज्ञात होता है कि खाने में यह उष्ण भी होगी। यथा सम्भव राई के गुणों से युक्त है। बाह्य लेप पर शीत तथा योगवाही होने से उष्ण वस्तुओं के साथ उष्ण और शीत द्रव्यों के साथ शीत है। इसका लेप शिरःशूल नाशक है।

बरसिंगी—देखे—वरसिंगी। बरहंता—देखे—बराहंता। बरांगोम—देखें—भांगरा में।

बरारा (Periploca Aphylla)

अर्क कुल (Asclepiadaccae) के इस बहुशाखी सीधे खड़े हुए झाड़ीदार क्षुप के पत्र प्रायः नहीं होते, कहीं–कहीं होते भी हैं तो वे ¼ इंच से भी कम लम्बे।

पुष्प—बड़े आकार के, चिकने, सुगंधित होते हैं। इस बूटी के प्रत्येक अंग में दूधिया रस भरा हुआ होता है।

यह पंजाब के मैदानों में अधिक पाया जाता है।

नाम :

हि0—पं0—बरारा, बारीं, बर्री। सिन्धी, म0—बुरेई। ले0—पेरिप्लोका एफिला।

गुणधर्म व प्रयोग :

इसका दूधिया रस शोथ व ग्रन्थि नाशक है। इसका लेप किया जाता है। छाल का क्वाथ विरेचक है।

बरासल पान (Flemingia Congesta)

शिम्बी कुल (Leguminosae) के इस छोटी जाति के सीधे खड़े हुए क्षुप के पत्र त्रिदल (3–3 एक साथ) गहरे हरे, चमकीले; पुष्प—छोटे बैंगनी रंग के; फली—छोटी, प्रत्येक में 1–1 गोल काला बीज होता है।

वर्षाकाल के बाद इसके क्षुप पहाड़ी प्रदेशों में विशेष पैदा होते हैं।

नाम :

हि0—बरासलपान, कुसुर, सुत्ता। म0—दौदौला। बं0—बरासलपान, भालिया। ले0—क्रान्जेस्टा, फ्लेमिंजिया।

गुणधर्म व प्रयोग :

यह व्रण शोथ नाशक है। इसकी जड़ों को या पंचांग को कूट, पीसकर, कुछ गरम कर लेप किया जाता है।

बराहंता (Tragia Involucrata)

एरण्डकुल (Euphorbiaceae) के 6–7 फुट ऊँचे इस लतारूप क्षुप के पत्र डिम्बाकृति, 2–4 इंच लम्बे, कुछ काले रंग के, अग्रभाग में क्रमशः नुकीले, किनारे, दन्तुर, दोनों ओर श्वेत सूक्ष्म रोमयुक्त, पत्रवृन्त ¼-½ इंच लम्बा होता है। पुष्प—तुर्रेदार, ऊपर से कुछ पीले रंग के अनेक पुष्प 1–4 इंच लम्बे पुष्पदण्ड पर आते हैं। फल—बहुत छोटे–छोटे गोल से 2–2 फल एकत्र, रोमश होते हैं।

नोट—इस क्षुप के विशेषतः पत्रों का अंगस्पर्श होने से

शरीर के उस अंग पर बहुत जलनयुक्त खुजली होती है तथा वह भाग लाल हो जाता है।

बरहन्ता (Tragia Involucrata)

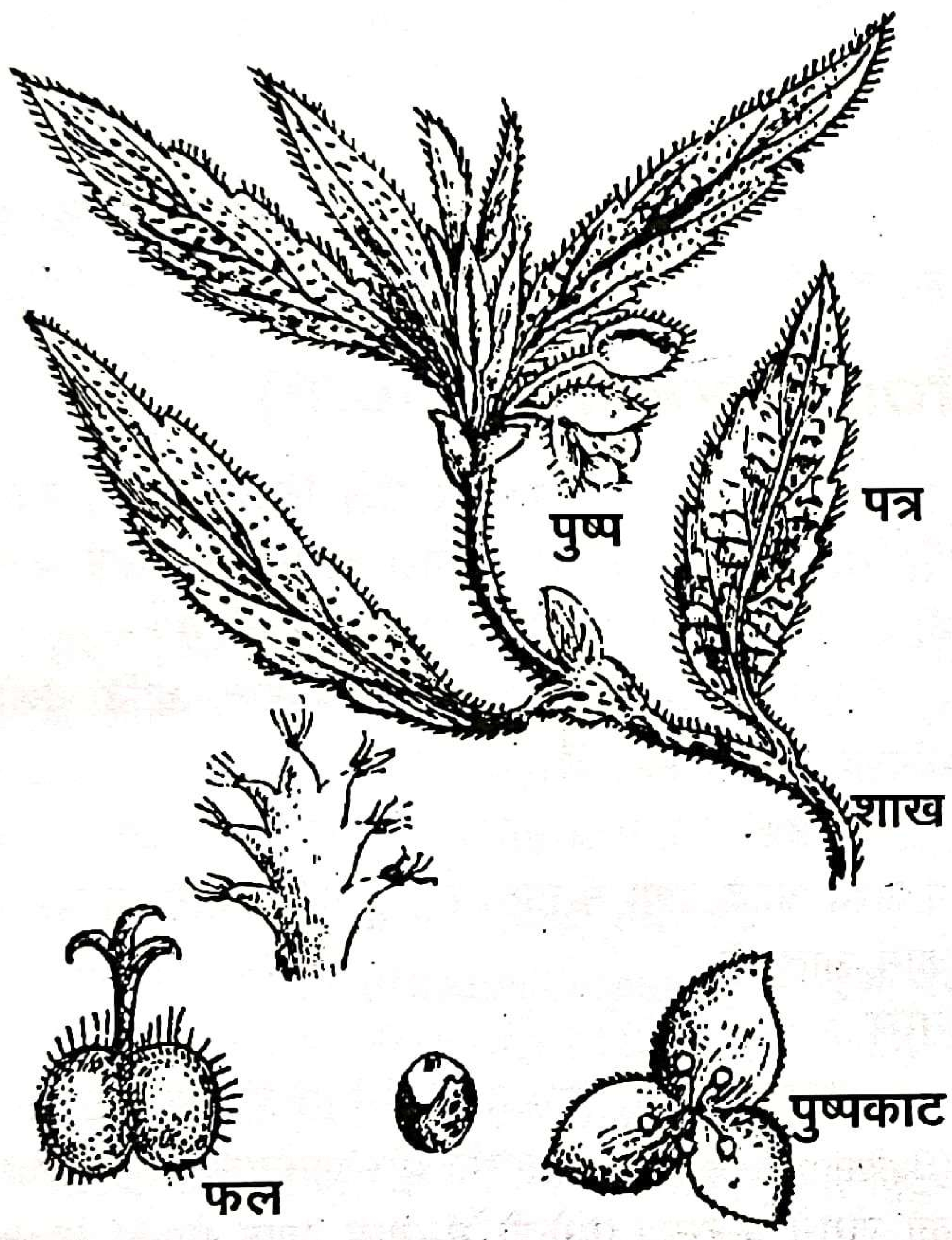

यह बिच्छू जैसा डंक मारने वाला, वेदनोत्पादक क्षुप प्रायः भारत में सर्वत्र जंगली प्रदेशों में, वर्षा काल में पैदा हुआ पाया जाता है। यह हिमालय प्रदेशों में बहुत होता है। ध्यान रहे, बिच्छुवा या बिच्छू बूटी इससे भिन्न है।

नाम :

सं0–वृश्चिकाली, विरुपा, धूमपुष्पा। हि0–बराहंता, बरहंता। म0–खाज कोलती, कांचकुरी। गु0–मोटी खाज वणीनी बेल। बं0–बिच्छूटी। ले0–ट्रेजिया इनव्होलुक्रेटा; ट्रेजिया केन्नाबिना (Tragia Cannabina)।

गुणधर्म व प्रयोग :

स्वेदल, धातुपरिवर्तक, मूत्रल है। साधारण ज्वर पर जिसमें हाथ पैरों में ठण्डक व ऐंठन होती है, इसकी जड़ का क्वाथ 5 से 10 तोला तक की मात्रा में दिया जाता है। यह प्रयोग फुफ्फुस शोथ (ब्रांकाइटिस) में भी साधारणतः उपयोगी है।

नारू पर–इसकी जड़ को जल में पीसकर लेप करने से नारू का कीड़ा बाहर निकलता है। वह जैसे–जैसे निकले तैसे–तैसे उसे रूई की मोटी बत्ती पर लपेटते हैं और लेप को लगाते जाते हैं। इस प्रकार दूसरे दिन तक वह सब बाहर निकल आता है। –ब0 गु0

खाज, उकवत या छाजन पर जड़ को तुलसी के रस में पीसकर लगाते हैं।

उपदंश–इसका क्वाथ दिन में 2 बार, 2½ तोला तक की मात्रा में देते रहने से उपदंश के व्रण और दाग दूर होते हैं।

गंज पर–इसके फलों को थोड़े जल के साथ सिर पर घिसते हैं, या लेप करते हैं।

बिच्छू के दंश पर भी यह उपयोगी है।

बरियारा–देखें–खरैंटी

बरू (Andropogan Holepensis)

यवकुल (Graraineae) के इस एक जाति के घास के पौधे ज्वार के पौधे जैसे किन्तु उसकी अपेक्षा पतली डंडी वाले, पत्ते व बीज भी ज्वार के पत्र व बीज जैसे होते हैं।

सफेद और काले भेद से इसकी दो जातियां हैं। सफेद जाति का बरू इधर विशेष पाया जाता है। इसके पौधे नदी या जलाशय के किनारे अधिक पैदा होते हैं। एक बार जिस स्थान पर यह पैदा हो जाता है, वहाँ इसका खूब विस्तार हो जाता है।

देहातों में तथा शहरों में भी पहले इसी के काण्डों की लिखने की कलमें बनाई जाती थीं। अब तो इनका स्थान होल्डरों ने ले लिया है, किन्तु अब भी कई स्थानों में इनका प्रचलन है।

इसके प्रबुद्ध पौधों के पत्ते घोड़ों तथा बैलों के लिए एक उत्तम रसीला चारा है, किन्तु छोटे या तरुणावस्था के पौधे कुछ विषाक्त होते हैं।

नाम :

सं0–वीरकाण्डक। हि0–बरूबोरू, बारहम। म0–बोरू। बं0–कलमूचा। ले0–एण्ड्रोपोगान होलेपेंसिस, सोरघम होलेपेंसे (Sorghum Holepense), अं. अमेरिकन जानसन ग्रास (American Johnson grass)।

गुणधर्म :

शीतल, मधुर, रुचिकर, बल्य, वृष्य तथा पित्त, दाह, श्रम, शोषादि नाशक है। इसके बीज शान्तिदायक व मूत्रल हैं।

बरोला (Holigarna Longifolia)

आम्रकुल (Anacardiaceae) के इस आम के वृक्ष जैसे ऊँचे वृक्ष की छाल मुलायम, पत्र–लम्बे, चमकीले तथा पुष्प–श्वेत वर्ण व मंजरियों में आते हैं।

इस वृक्ष के काण्ड से एक प्रकार का काला रालदार कड़वा तथा विषाक्त रस झरा करता है।

नाम :

हि0, बं0–बरोला। म0–मुदविंबो, हुलूगिरी, हालुगिरी। ले0–होलीगेरना लांगिफोलिया।

गुणधर्म :

इस वृक्ष का निर्यास या रस प्रभावशाली चर्मदाहक हैं। इसके लगाने से शरीर के ऊपर छाला उठ जाता है।

बलसां (Balsamodendron Opobalsamum)

गुग्गुल कुल (Burseraceae) के इस बड़े कंटकयुक्त वृक्ष के प्रत्येक कांटे के निम्न भाग में मेंहदी पत्र जैसे किन्तु कुछ छोटे पत्र लगते हैं। पुष्प–पत्रों के मध्य भाग में आते हैं। फल–फालसे जैसे किन्तु कुछ चिपटे कच्ची दशा में हरे, पकने पर लाल होते हैं। प्रत्येक फल में 1 से 3 बीज काली मिर्च जैसे किन्तु कुछ बड़े, किंचित लम्बे, ऊपर से पीताभ कृष्ण रक्त वर्ण के भीतर श्वेत मज्जा युक्त, स्वाद में कड़वे होते हैं।

बलसाँ

(Balsemodendron Opobalsamum Kuntu)

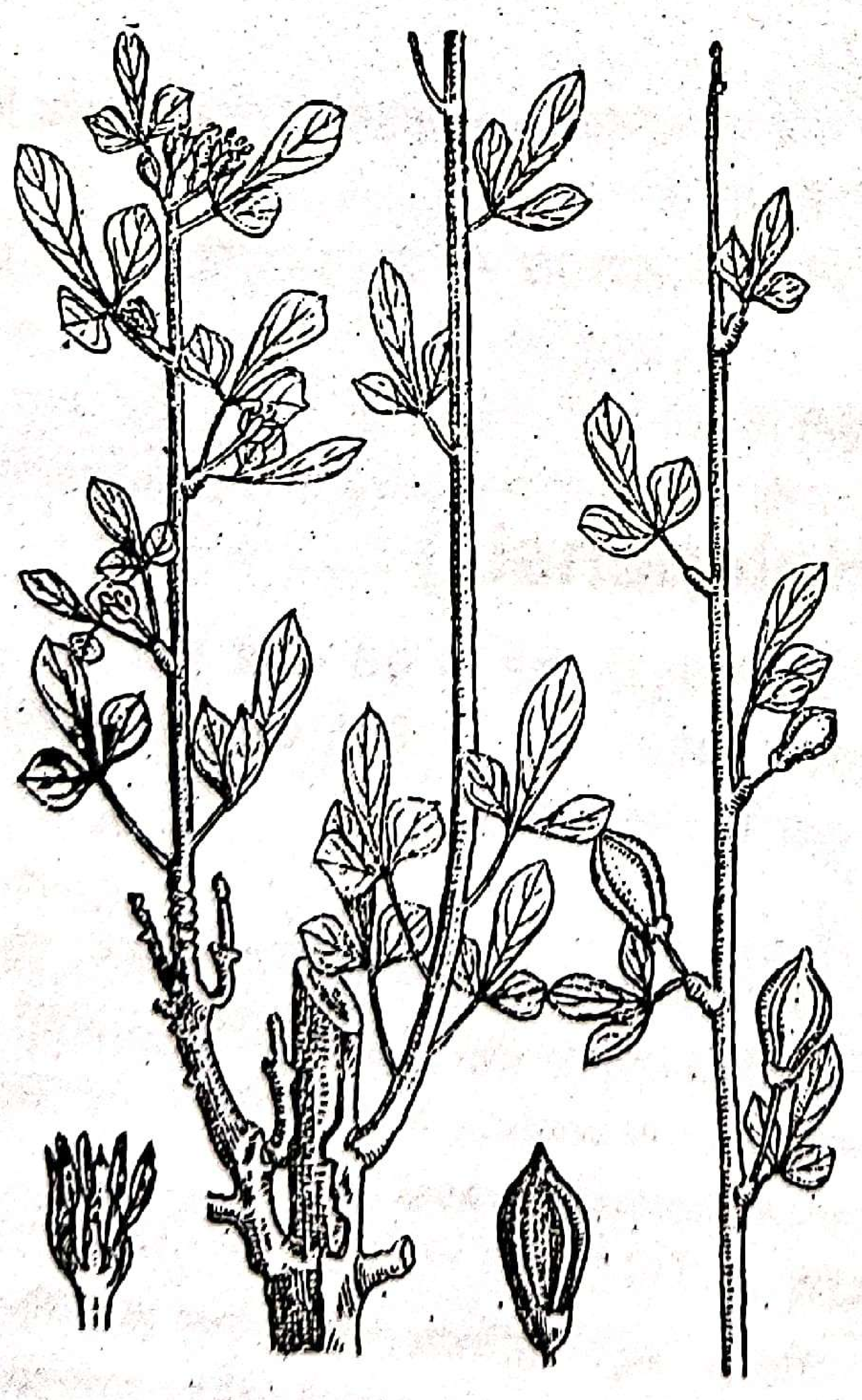

वृक्ष की लकड़ी सुगंधित, वजनदार, कुछ लाल रंग की होती है। वृक्ष में चीरा देने से एक प्रकार का सुगंधित रक्ताभ पीत वर्ण का लसदार तैल निकलता है। स्वाद में यह तेल कड़ुवा, किंचित चरपरा होता है। इसके फल या बीजों में मनोहर तारपीन जैसी गंध आती है।

इसके वृक्ष विशेषतः अरब, इजिप्ट आदि देशों के जंगलों में पैदा होते हैं।

इसके तैल, फल (बीज) और काष्ठ का आयास भारत में अरब आदि देशों में होता है। यूनानी प्रयोगों में यह बहुत काम आता है।

नाम :

बलसां, बलसू (यह वृक्ष का नाम है), अं0–बालसम ट्री (Balsam Tree), ले0–बाल्सेमोडेंड्रा आंपोबलसेमम, इसके तैल को रोगने बलसां। अंग्रेजी में–बाम आफ मेक्का (Balm of mecca), बालसम (Balsam) कहते हैं।

तैल में–एक उड़नशील तैल 30 प्रतिशत, कड़ी राल 64 प्रतिशत, मुलायम राल 4 प्रतिशत तथा कड़वा सत्व 4 प्रतिशत पाया जाता है।

प्रयोज्यांग–तैल, लकड़ी और फल (बीज)।

गुणधर्म व प्रयोग :

तैल–तैल–उष्ण, स्निग्ध, कफ निःसारक, बाजीकरण, मस्तिष्क बलदायक तथा सुजाक, शोथ व्रण आदि के लिये विशेष उपयोगी है। अर्धांगवात, अर्दित, अपतानक, आक्षेपक, वातरोग (Tetanus), अपस्मार आदि वात कफज विकारों एवं कास, श्वास, जुखाम, वृद्धों की जीर्ण कास, फुफ्फुस के व्रण तथा औपसर्गिक पूयमेह, श्वेत प्रदर आदि पूयस्राव व्रण आदि पर अत्यधिक प्रयुक्त होता है।

मात्रा–1 से 1½ माशा तक। गर्भिणी के लिए हानिकर है। हानि निवारक–कद्दू व कद्दू का तैल। प्रतिनिधि चंदन का तैल है।

लकड़ी (बलसां वृक्ष की लकड़ी) को ऊहद या चोब बलसां कहते हैं। यह उष्ण, रूक्ष, बल्य, कफ निःसारक, मस्तिष्क एवं आमाशय संशोधक, गर्भअपरा निःसारक तथा अपस्मार, भ्रम, मूर्च्छा जैसे मस्तिष्क विकृति जन्य रोग,

कफज कास, कृच्छ्रश्वास आदि में प्रयुक्त होती है। मात्रा–2–3 माशा। यह आंत्र के लिये हानिकर है। हानि निवारक कतीरा है। प्रतिनिधि–इसी बलसां का फल है।

फल या बीज–उष्ण, रूक्ष, दीपन, कफ निःसारक, मस्तिष्क संशोधक, बाजीकरण, आर्त्तवजनन है तथा मस्तिष्कविकार, अजीर्ण, कोष्ठबद्धता, जीर्ण कास, श्वास, अतिसार, प्रमेह, धातुस्राव, रुद्धार्तव आदि में प्रयुक्त होता है।

मात्रा–3 से 5 माशा तक। यह मूत्राशय (बस्ति) के लिये हानिकर है। हानि निवारक कतीरा तथा प्रतिनिधि इसी बलसां की लकड़ी है।

इसकी लकड़ी या फल (बीज) के 1 भाग में 20 भाग जल मिलाकर बनाया हुआ क्वाथ कई रोगों में दिया जाता है।

जीर्ण कास, श्वास, अतिसार, प्रवाहिका पर–फलों का बबूल के गोंद के साथ प्रयोग करते हैं।

विकृत या दुष्ट व्रणों, जख्म तथा रक्तस्रावी व्रण पर फल (बीज) की पुलटिस बनाकर बांधते हैं।

बल्लर देखें–बांकला

बलाया (Cadaba Trifoliata)

वरुण (बरना) कुल (Capparidaceae) के इस बहुशाखी, बड़े (या लतारूप) क्षुप की छाल मुलायम धूसर या भूरे रंग की; पत्र–3.8 से 7.5 से0मी0 तक लम्बे; पुष्प–छोटे–छोटे गुच्छों में पीताभ श्वेत वर्ण के; फल या फली–हरी, चिकनी, मुलायम; बीज–वृक्काकार बहुत छोटे होते हैं।

नोट–यह कोधव (Cadaba Indica) का ही एक भेद विशेष है। जहाँ कोधव की उत्पत्ति होती है, उसी स्थान में यह भी पाया जाता है। कोधव का प्रकरण भाग 2 में देखें।

बलाया (यह संस्कृत नाम है); ले0–केड़ेबा ट्रिफोलिएटा।

गुणधर्म व प्रयोग :

जड़ व पत्र–विरेचक, ऋतुस्राव नियामक, कृमि एवं शोथनाशक हैं। बालकों के अजीर्ण, बड़ों की संधिपीड़ा संधिवात, स्त्रियों के रुद्धार्त्तव, कष्टार्त्तव में उपयोगी हैं।

रुद्धार्त्तव, नष्टार्त्तव तथा कष्टार्त्तव में पत्तें के क्वाथ में रेंडीतैल व हल्दी का चूर्ण मिलाकर देने से विशेष लाभ होता है।

उपदंश, गण्डमाला तथा संधिवात (गठिया) में शोथनाशार्थ एवं रेचनार्थ पत्रों के क्वाथ में हरड़ व सौंठ अथवा सनायपत्र व एप्सम साल्ट मिलाकर देते हैं।

गठिया एवं संधिवात पर इसके पत्तों के साथ जिंगनी के पत्रों को पीसकर पुल्टिस बनाकर बांधते या गरम लेप करते हैं।

व्रणों पर इसके पत्तों की पुल्टिस बांधने से शीघ्र ही व्रण का परिपाक होता है।

पत्तों का उपयोग औषधीय तैलों के बनाने में भी किया जाता है।

—नाडकर्णी

बलूत (Quercus Incana)

मायाफल कुल (Cupuliferae) के इस सदैव हरे भरे रहने वाले पहाड़ी वृक्ष की छाल गहरी बादामी रंग की, पत्र 3–6 इंच लम्बे एवं 2 इंच चौड़े आयताकार, लंबाग्र, दन्तुर, कड़े। फल–कुछ वृक्षों के फल गोल 1 इंच से कुछ कम लम्बे, पकने पर बादामी रंग के इसे शाह बलूत और कुछ के फल लम्बोत्तर होते हैं, इसे 'बलूनुल मलिक' कहते हैं। फल के बाह्य छिलके के नीचे गूदे से चिपटा हुआ जो बारीक छिलका होता है, उसे 'जुफ्तबलूत, कहते हैं। इसका फल ही 'बलूत' कहलाता है।

इसके वृक्ष विशेषतः शीत प्रदेशों में पैदा होते हैं। भारत में इसके जो वृक्ष हिमालय में सिंधु नदी के किनारे से लेकर नैपाल तक पाये जाते हैं उनके फलों को सीता सुपारी, शिला सुपारी, बंज, वांज, मारू, शिधार आदि नामों से पुकारते हैं। गुणधर्म में बाहरी प्रदेशों के तथा भारत के बलूत में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

नोट–एक 'बलूती' नाम की बूटी भी होती है। उसका वर्णन इसी प्रकरण के अन्त में नोट में देखिये।

नोट–मोरु नामक प्रस्तुत प्रसंग के बलूत की एक उपजाति (Quercus Dihatata) होती है। इसकी पत्तियों पर बने हुये कृमिग्रह (Galls) स्वाद में मधुर होने से ये खाये जाते हैं।

इसी की एक ईरानी उपजाति (Quercus Infectoria) होती है। जिससे माजूफल की उत्पत्ति होती है।

नाम :

हि0–बलूत, बान, बांझ, बंज, सीता सुपारी है। अं0–कुमाऊ ओक (Kumaon Oak), ग्रे ओक (Grey Oak)। ले0–क्वेर्कस इन्केना। इसकी लकड़ी में टेनिन पाया जाता है।

प्रयोज्यांग–फल, फल का गूदा व फल के भीतर की बारीक छाल।

गुणधर्म व प्रयोग :

शीत, रूक्ष, संकोचक, मूत्रल, दीपन, रक्तस्तंभन, तथा सुजाक, मंदाग्नि, श्वास, उन्माद, शुक्रमेह, श्वेत–प्रदर, अतिसार, प्रवाहिका, आंत्रव्रण रक्तस्राव आदि में प्रयुक्त किया जाता है।

बलूत (Quercus Incana Roxb.)

फूलों को उपयोग में लाने के पूर्व जमीन में कुछ समय के लिये गाड़ कर फिर निकाल कर धो लेने से इनका कड़ुआ विकारी तत्व नष्ट हो जाता है।

श्वेत प्रदर में इसे पीसकर फलवर्ती बना गर्भाशय में धारण कराते हैं तथा खिलाते भी हैं।

बहुमूत्र या बूंद–बूंद मूत्र का आना, हस्तिमेह, शय्या मूत्र आदि मूत्र विकारों में बलूत 2 भाग के साथ कुंदर 1 भाग पीसकर जैतून तैल में मिला सेवन कराते हैं। अथवा इसे नागरमोथा आदि उपयुक्त द्रव्यों के साथ पीस कर चूर्ण रूप में सेवन कराते हैं।

मुखपाक तथा शिश्न या अण्डकोष के व्रणों पर इसे जलाकर महीन चूर्ण कर छिड़कते हैं। तात्कालिक हुये जख्म पर इसे बुरकने से वह शीघ्र ही सूख जाता है। इसी प्रकार शरीर के किसी भी भाग में होने वाले रक्तस्राव या द्रव प्रवाह को बन्द करने के लिये इसे बुरकते या इसका लेप लगाते हैं। इसके उक्त चूर्ण को जल में घोलकर पिलाते भी हैं। इसे पिलाने से रक्तष्ठीवन, आंत्रव्रण, जीर्णातिसार, प्रवाहिका में भी लाभ होता है या इसका क्वाथ बनाकर पिलाते हैं।

गुदभ्रंश में रोगी को इसके क्वाथ में बिठाते तथा इसका चूर्ण छिड़कते हैं।

आंत्र वृद्धि में इसका लेप करते हैं।

इसे पुरानी शराब के साथ पीसकर बालों पर लगाने से वे काले हो जाते हैं तथा उनका झड़ना बन्द होता है।

नोट–मात्रा–चूर्ण 2–3 माशे। क्वाथ 9 माशे। अधिक सेवन से यह कण्ठ के लिये हानिकर है, सिर दर्द पेट फूलना, वात बढ़ना, आंत्र में सुद्दे होना आदि विकार भी होते हैं। हानि निवारक–सिकंजबीन, शक्कर या खांड़ है। इसका प्रतिनिधि गुलनार है।

नोट–बलूती इस बूटी के पत्र लहसुन के पत्र जैसे, हरिताभ कृष्ण वर्ण के अत्यधिक रोमश, पुष्प गोल पीत वर्ण के, तेज गंधयुक्त होते हैं।

इसकी जड़ व पत्र उष्ण व रूक्ष हैं। पत्तों को पीस कर शहद में मिलाकर फोड़े पर लगाने से उनका पीव निकलकर वे साफ हो जाते हैं। अर्श में पत्रों को भूभल में दबाकर बांधने से बहुत लाभ होता है। पागल कुत्ते के दंश स्थान पर इसे नमक के साथ पीसकर लगाने से लाभ होता है।

–ब0 च0

बसक–देखें–बासक।

बसंत (Hypericum Perforatum)

बसन्त कुल (Hyopericaceae) की यह एक वर्ष जीवी बूटी समशीतोष्ण पश्चिमी हिमालय में कुमायूँ से काश्मीर तक 6 से 9 हजार फुट की ऊँचाई तक पैदा होती है।

नाम :

हि0–बसंत, डेंड़लु, बालसंत। अं0–हायपेरिकन (Hypericon) ले0–हायपेरिकम परफोरेटम।

गुणधर्म तथा प्रयोग :

तिक्त, सुगन्धित, संकोचक, शोधक, मूत्रल, ऋतुस्राव नियामक, रेचक, कृमिनाशक, अर्श, व्रण आदि में उपयोगी है।

इसके पत्र तीक्ष्ण, तिक्त, अग्निवर्धक, मृदुविरेचक, कृमिघ्न, अर्श, कर्णपीड़ा, अतिसार, गुदभ्रंश, योनिभ्रंश तथा बिच्छू के विष में भी उपयोगी है। इसकी छाल मूत्रल तथा मूत्र के विकारों और अर्श के लिए लाभदायक है।

बाह्य प्रयोग में त्वचा के लिए यह उत्तेजक है। इसके फूलों में एक उड़नशील तैल, लालरंग की राल तथा लालरंग का पदार्थ होता है।

इस बूटी के स्वरस का जख्म, चोट, रगड़ तथा मोच के ऊपर लेप किया जाता है। इसका फाण्ट या शीत निर्यास जीर्ण जुकाम, आंत्र विकार एवं मूत्र मार्ग के विकारों पर बहुत सफलता के साथ प्रयुक्त किया जाता है।

–नाड़कर्णी, ब0 चं0

बसन्त (Hypericum Perforatum Linn.)

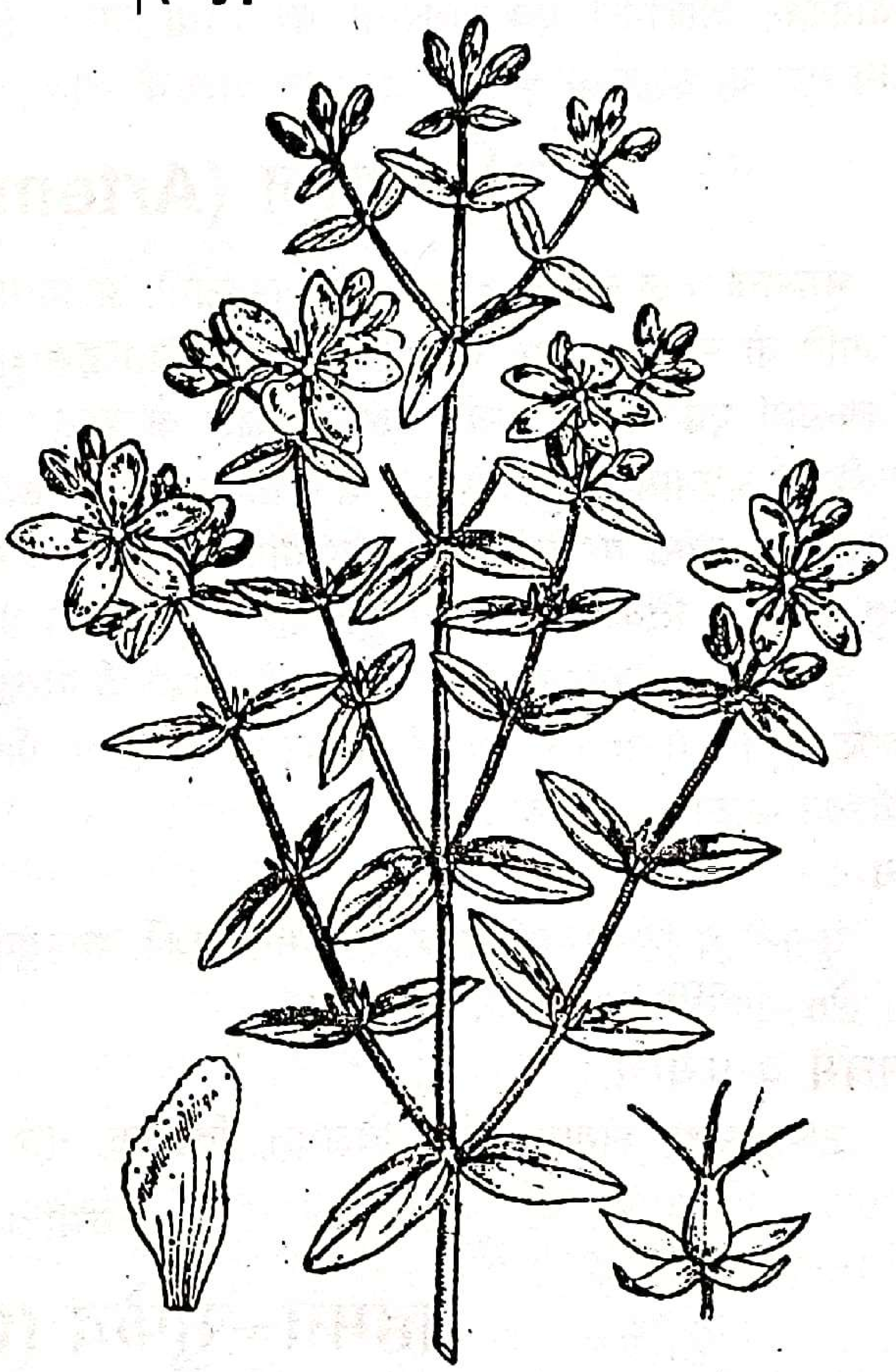

बसट्रा (Callicarpa Lanata)

निर्गुण्डी कुल (Verbenaceae) के इस ऊँचे वृक्ष की शाखायें गोलाकार, मोटी, रोमश, छाल–भूरी, खुरदरी, फटी हुई सी, पत्र–6–9 इंच लम्बे, 3–4 इंच चौड़े, डिम्बाकृति, घने रोमश, डंठल की ओर गोल, अग्रभाग में नुकीले, पृष्ठभाग में चमकीले हरे, अधः भाग में श्वेत या पीले वर्ण के रोमाच्छादित, पत्रवृन्त 2 इंची, गोल, रोमश, पुष्प–कुछ नलिकाकार गुच्छों में फीके लाल रंग के, पुष्प–वृन्त बहुत छोटा, फल–गुच्छों में, चमकीले काले रंग के, गोल ¼ इंच व्यास के होते हैं। शीत काल में फूल व फल आते हैं।

इसके वृक्ष दक्षिण में कोंकण, पश्चिमी घाट, बम्बई, मद्रास व सीलोन में विशेष पैदा होते हैं।

नाम :

हि0–बसट्रा। म0–पोंड़ी, कारीवाटी, इसपर। बं0–मसन्दारी, मसन्दार। ले0–केलिकार्पा लेनेटा, केलि0 केना (Callicarpa Cana), केलि0 टोमेन्टोसा (C. Tomentosa), केलि0 वालिचियाना (C. Wallichiana)।

बसट्रा (बं० मसन्दारी)
(Callicarpa Lanata Linn.)

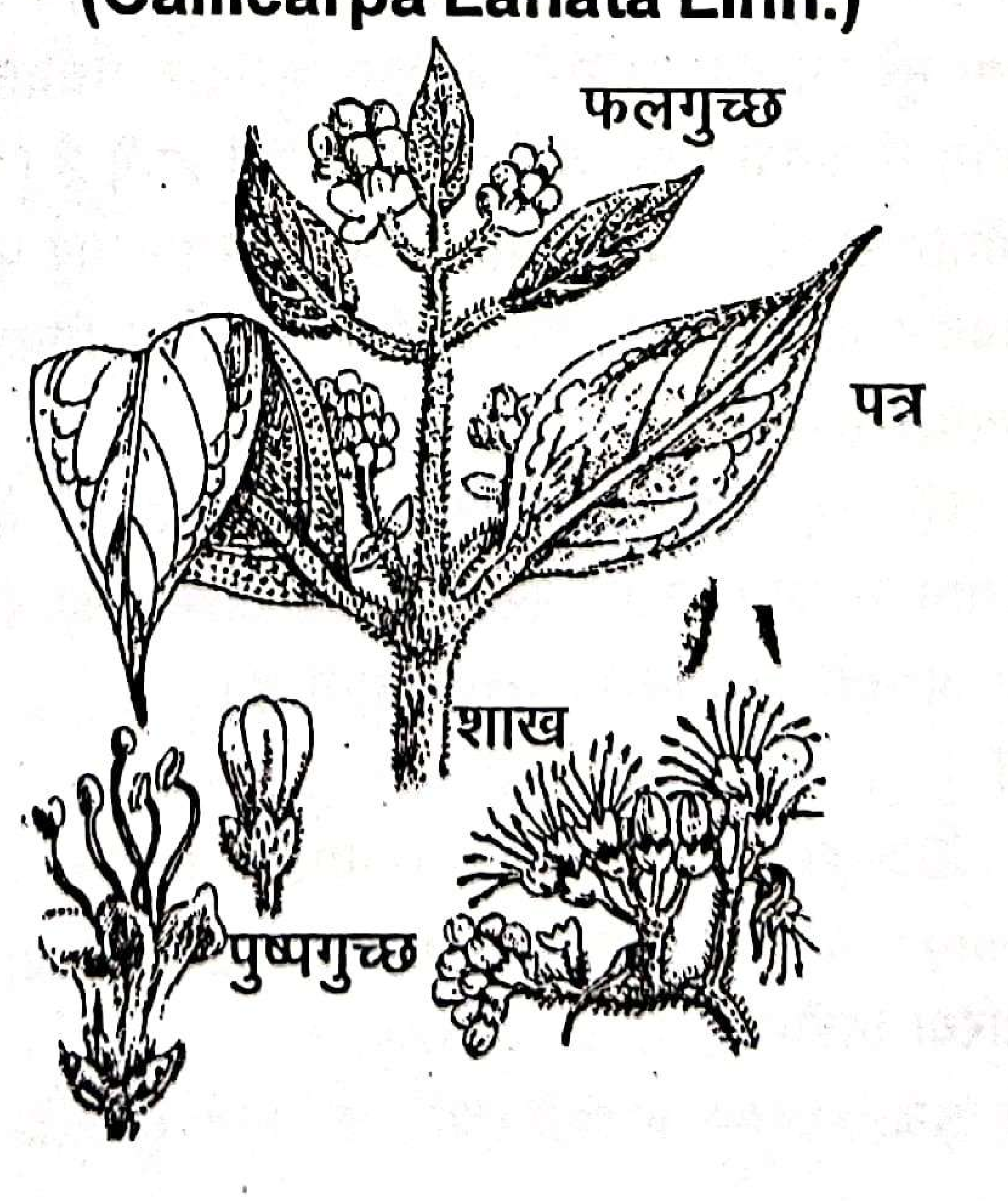

गुणधर्म व प्रयोग :

शीतल, स्निग्ध, मृदु, दाहनाशक, यकृदुत्तेजक है।

मूल तथा छाल का क्वाथ ज्वर की शांति, पित्त प्रकोप, यकृदावरोध, शीतपित्त एवं चर्मरोगों पर दिया जाता है। 1 भाग मूल या छाल के चूर्ण का 20 भाग जल के साथ यह क्वाथ सिद्ध कर 9 माशा या 1 तोला तक की मात्रा में देते हैं।

मुख पाक या मुख के व्रण या छालों पर उक्त क्वाथ के अथवा इसके पत्तों को दूध में उबाल कर उसके कुल्ले कराते हैं।

बस्तियाज़ (Artemisia Stechmaniana)

भृंगराज कुल (Compositae) के खुरासानी, अजवायन की जाति के सोया के क्षुप जैसे ऊँचे, कंटकयुक्त इस क्षुप की शाखायें एक बित्ता लम्बी, मूल या जड़ के समीप से निकली हुई अग्रभाग में खुरदरी घुंडी से युक्त, पत्र–छोटे–छोटे, खुरदरे, पुष्प–श्वेत व नीले, बीज–अजवायन के बीज जैसे, किन्तु स्वाद में तिक्त व चरपरे, कुछ सुगन्धयुक्त होते हैं।

इसके क्षुप खुरासान व तुर्किस्तान के प्रदेशों के विस्तृत उत्कृष्ट भूभाग में अधिक होते हैं। उधर से ही इसके बीज आदि का आयात इधर होता है।

नाम :

यूनानी व हिन्दी–बस्तियाज, दिरमना तुर्की, शीहतुर्की इ0। ले0–आर्टिमिसिया स्टेकमेनिएना।

गुणधर्म व प्रयोग :

उष्ण, रूक्ष, लेखन, शोथ विलयन, विरेचक, मूत्र व आर्तव प्रवर्तक, कफ निःसारक, जीर्ण ज्वर नाशक, उदर कृमि नाशक, व्रण को शुष्क करने वाला है।

वातज शोथ पर इसका लेप करते हैं। गंज पर–इसे जलाकर जैतून तैल में मिलाकर लगाते हैं। बाल शीघ्र उग आते हैं। आमाशय की शोथ, जलोदर तथा उदर कृमि नाशार्थ इसका क्वाथ पिलाते हैं।

आर्तव प्रवर्तनार्थ–उपयुक्त द्रव्यों के साथ इसका क्वाथ देते हैं।

दाँत व मसूढ़ों को सुदृढ़ करने के लिये–इसकी बारीक टहनी या शाखा से दातौन करते हैं।

नोट–मात्रा–1–3 माशा तक यह आमाशय तथा मस्तिष्क के लिए हानिकर है। हानि निवारक रूमी मस्तंगी या तुरमुस है। प्रतिनिधि अफसंतीन तथा सुदाब हैं।

–यूनानी द्रव्य गुण

बसौंटा–देखें–अडूसा।

बहमन–सुफेद (Centaurea Behen)

भृंगराज कुल (Compositae) के भांगरा जैसे क्षुपों की यह जड़ें हैं। ये क्षुप भारत में पैदा न होने से इनकी शुष्क जड़ें–पर्शिया, ईरान, सीरिया, अरमानिया आदि देशों से यहाँ आती हैं। ये भूरे रंग की जड़ें बाहर से सफेदी लिये हुए या श्वेताभ भूरे रंग की, खुरदरी, अत्यन्त झुर्रीदार, पेंचदार तथा अग्रभाग में अनेक गोल रेखाओं से अंकित होती हैं। काटने पर भीतर से श्वेत स्पंज जैसी, जल में भिगोने पर फूलकर लुआबदार हो जाती है। स्वाद फीका, किंचित तिक्त तथा लुआबदार होता है।

जो जड़ें कुछ वजनदार व कड़ी होती हैं वे तथा खुरासान से आने वाली खुरासानी एवं अरमीनियां से आने वाली अरमनी जड़ें विशेष उत्तम होती हैं।

नाम :

हि0–बहमन सफेद। अं0–व्हाईट बिहीन (White Behen)। व्हाईट रहेपांटिक (White Rhapontic) ले0–सेंटारिया बिहीन।

बहमन सफेद (Centaurea Behen Linn.)

रासायनिक संगठन :

इसमें बेहमिन (Bahemin) नामक एक चमकदार क्षारोद (अल्कलाइड) पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग :

उष्ण, रूक्ष आदि प्रायः सब गुण धर्म व प्रयोग बहमन लाल जैसे ही हैं। यह कामोद्दीपक तथा कर्नल चोपरा के मतानुसार पांडु रोग व अश्मरी के विकारों पर विशेष प्रयुक्त होता है।

नोट—मात्रा—6 माशा। यह पित्त या उष्ण प्रकृति वालों के लिए हानिकर है। हानि निवारक उन्नाव, कतीरा, तोदरी या मूसली सुफेद है। प्रतिनिधि—तोदरी या बहमन लाल है।

बहमन लाल (Salvia Haematodes)

तुलसी कुल (Labiatae) के तुलसी के पौधों जैसे पौधों की ये जड़ें हैं। इनकी शुष्क जड़ें जो बाजारों में बिकती हैं। वे शुष्क छोटी लाल गाजर जैसी खुरदरी, झुर्रीदार सफेद बहमन की अपेक्षा अधिक कड़ी, बजनदार, कुछ टेढ़ी सी तथा टूटने में सख्त व कुछ सुगन्धयुक्त होती हैं। ये बाहर से कृष्णाभ रक्तवर्ण की व भीतर हलके लाल रंग की होती हैं। स्वाद में कुछ कसैली, मधुर एवं लुआबदार होती हैं।

यह पर्शिया तथा भारतवर्ष में भी अधिक पैदा होती हैं।

नाम :

हि0—बहमन लाल। अं0—रेड बहमन (Red Bahman), ब्लड वेन्ड सेज (Blood vened sage), रैड रेहेपांटिक (Red rhpontic)। ले0—सल्विया हीमोटोड्स।

रासायनिक संगठन :

इसमें वसा, टैनिक एसिड, बहमीन नामक एक तिक्त चमकदार क्षारोद (अल्कलायड) आदि द्रव्य पाये जाते हैं।

गुणधर्म व प्रयोग :

उष्ण, रूक्ष, बाजीकर, वृष्य, शुक्रवर्धक, हृदयोत्तेजक है। प्रायः सर्व प्रकार की धातुविकृति, प्रमेहज, नपुंसकता या वीर्यक्षय व्याधियों में इसका अकेले या उपयुक्त अन्य द्रव्यों के साथ बहुत प्रयोग किया जाता है। प्रायः इसका चूर्ण मिश्री मिलाकर दूध के साथ या इसके माजून का सेवन कराया जाता है। हृदय दौर्बल्य को दूर करने में तथा हौलदिल, हृच्छूल एवं हृदय के कपाटों की विकृति में इसके सेवन से विशेष लाभ होता है। यह शरीर में वसा जातीय अंश का अधिक संचयकर दुर्बल को भी सबल एवं स्थूल बनाता है। वृक्क तथा बस्ति के विकारों में तथा अश्मरी और रक्त की दूषित स्थिति में इसका प्रयोग लाभदायक कहा जाता है।

नोट—मात्रा 6 मा0 तक। यह प्लीहा तथा उष्णप्रकृति वालों के लिये हानिकर है। हानि निवारक उन्नाव व अनीसून है। प्रतिनिधि, मूसली, तोदरी या सफेद बहमन।

बहरोजा—देखो गन्धा बिरोजा, चीड़ में। बहुफली—देखो औंधफली तथा चेंच (छोटी)।

बहेड़ा (Terminalia Belerica)

हरीतकी वर्ग एवं हरीतकी कुल (Combrataceae) के 15 से 100 फुट (इससे भी कहीं 2 ऊँचे इस वृक्ष का काण्ड—लम्बा, सीधा, गोल 8 से 30 फुट व्यास का शाखा—प्रायः 6—10 फुट (कहीं 2 इससे भी अधिक) लम्बी, छाल 1/3 इंच मोटी खुरदरी, पत्र—विषमवर्ती, छोटी—छोटी टहनियों पर अधिक सघन, वट या महुये के पत्र जैसे 3—6 इंच लम्बे, अण्डाकार कुछ चौड़े, पत्रक—ताम्रवर्ण के दुर्गन्धयुक्त, पुष्प—3—6 इंच लम्बी सींकों पर नन्हें—नन्हें, पीताभ पुष्पों की मंजरियां आती हैं।

फल—गोल 1 इंच लम्बे वर्ण के, बीज युक्त होते हैं।

पतझड़ में पुराने पत्ते गिरने पर जबकि नवीन पत्र आते हैं। प्रायः उसी समय (माघ, फाल्गुन में) पुष्प आते हैं, तथा शीतकाल के प्रारम्भ में फल लग जाते हैं और अगहन, पूस तक पक जाते हैं।

गोंद—इसके वृक्ष से बबूल की गोंद जैसी गोंद निकलती है। किन्तु यह गोंद विशेष उपयोग में नहीं आती। यह स्वाद रहित होती है। इसे जंगली लोग खाते हैं। यह जल में भिगोने से फूलती तो है, किन्तु घुलती नहीं। अन्य गोदों के साथ मिलाकर यह बेची जाती है। आग में जलाने से यह जलती है। इसके गुणधर्म के विषय में कहा जाता है कि यह शांतिदायक तथा विरेचक है।

इसके वृक्ष भारत व बर्मा में विशेषतः पहाड़ी जंगली प्रदेशों में अधिक पाये जाते हैं। चूने युक्त भूमि में यह वृक्ष अधिक फूलता व फलता है।

नोट—(1) छोटे और बड़े फल के भेद से इसकी दो जातियाँ हैं। छोटी जाति के फल गोलाकार ½-¾ इंच व्यास के तथा बड़ी जाति के फल अंडाकार एवं अपेक्षाकृत दूने बड़े, वजन में दो तोला तक होते हैं। बड़े फलों में टेनिन की मात्रा अधिक होने से विशेष गुणदायी हैं।

(2) यह चरक के विरेचनीयगण, ज्वरहर तथा सुश्रुत

के त्रिफला, मुस्तादिगणों में लिया गया है। यह त्रिफला का एक अंग होने से त्रिफलादि घृत, त्रिफलादि गूगल, अरिष्टादि में लिया जाता है।

(3) बाजार के बहेड़े प्रायः सछिद्र, कीड़ों से खाये हुए, या बहुत पुराने जिनके भीतर का गूदा भूरा या काला हो गया है ऐसे फल बेकार होते हैं। वे चिकित्सोपयोगी नहीं होते। चिकित्सा के लिए ऐसे फल लेने चाहिये जो कीड़ों से खाये हुये न हों, नवीन हों, आकार में बड़े तथा रंग में उज्ज्वल, हरिताभ पीतवर्ण के गूदे वाले हों। प्रायः नवम्बर से फरवरी–मार्च तक इसके फल परिपक्व होते हैं और बाजार में ग्रीष्मारम्भ में ही ताजे फल आने लगते हैं। इसके पश्चात् ये सुखाकर तथा गूदा अलग कर बेचे जाते हैं। सबसे उत्तम तो यह है कि जहाँ इसके वृक्ष हों वहाँ उक्त समय में जाकर फलों को वृक्षों पर से उतार कर शुष्क कर ठण्डे स्थान पर रखें या बोरियों, कनस्तरों में बन्दकर रख लेवें।

नाम :

सं0–विभीतक (विगतं रोग भयमस्मात्। विभ्यति रोगा अस्मात वा जिनके सेवन से रोग भय दूर हो जाता है। या जिससे रोग भयभीत होते हैं) कर्ष फल (जिसका फल 1 से 2 तोले वजन का हो), अक्ष (इसके फल अक्ष अर्थात जुआ खेलने में प्रयुक्त होते हैं) कलिद्रुम (जुआ में प्रयुक्त होने से यह कलिकलह का वृक्ष कहाता है अथवा[1]), भूतवास (काल रूप भूत का घर) इ0।

हि0–बहेड़ा, बहेरा, भैरा, बिरहा, गुल्ला इ0। म0–बहेड़ा, धाटिंग। गु0–बहेड़ो, बबेड़ा। बं0–बहेड़ा, भेरच। अं0–बेड्डानट्स (Beddanuts), बेलिरिक मिराबोलन्स (Beliric Myroblans)। ले0–टर्मेनेलिया बेलेरिका।

रासायनिक संगठन :

फलों में गेलोटेनिक एसिड (Gallo tannic acid) 17 प्रतिशत, कुछ रंजक द्रव्य, व राल तथा बीजों में एक हरिताभ पीतवर्ण का तैल 25 प्रतिशत पाया जाता है। तैल दो प्रकार का एक पतला पीतवर्ण का और दूसरा श्वेत घृत जैसा गाढ़ा होता है। यह घृत के स्थान में खाया भी जाता है।

प्रयोज्यांग–फल, बीजों की गिरी, तैल व वृक्ष की छाल।

1. अथवा–राजा नल के सारथी बाहुक के शरीर में छिपा हुआ कलि जब शाप के अन्त में प्रकट हुआ, तब नल के शाप के भय से यह बहेड़े के वृक्ष में छिप गया तथा उसे ही अपना घर बना लिया। अतः यह वृक्ष कलिद्रुम या कलियुगालय कहाता है। —महाभारत वनपर्व

गुणधर्म व प्रयोग :

लघु, रूक्ष, कषाय, मधुर, उष्ण वीर्य[1] मधुर विपाक त्रिदोष, विशेषतः कफ पित्त शामक, दीपन, अनुलोमन, रक्त स्तम्भन, वेदना स्थापक, धातुवर्धक, कफघ्न, केशवर्धक, चक्षुष्य, शोथ (श्वास नलिका के तथा अन्य शोथों) को दूर करने वाला तथा अग्निमांद्य, आध्मान, तृषा, वमन, अर्श, कृमि रोग, पलित, प्रतिश्याय, कास, श्वास, स्वरभेद, रक्तष्ठीवन, सामान्य दौर्बल्य, नेत्र रोग, नासारोग, रक्त दोष आदि में उपयोगी है।

बहेड़ा (Terminalia Belerica Roxb.)

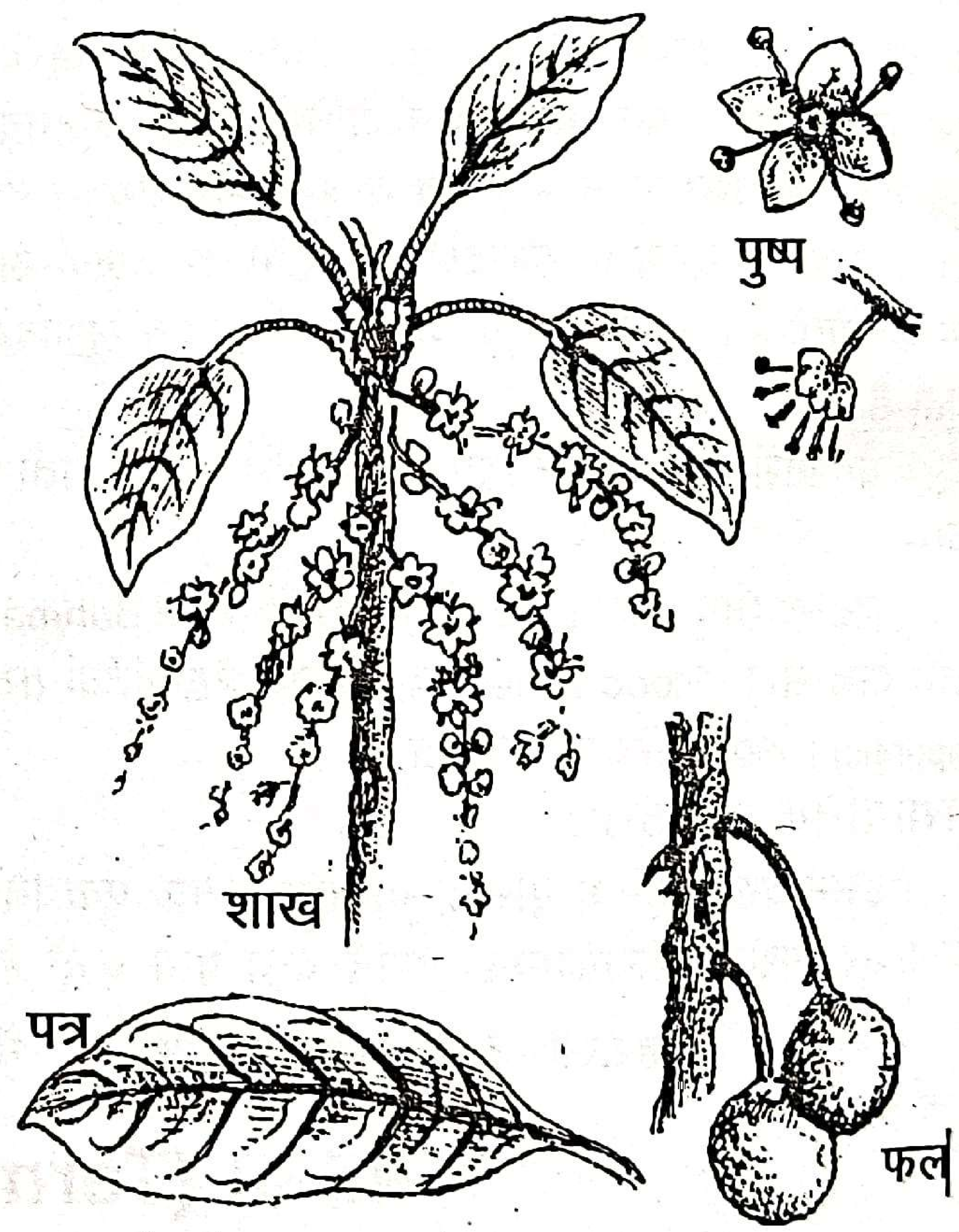

बहेड़े का मुख्य कार्य विशेषतः रस, रक्त, मांस और मेद धातुओं पर होता है। इसका अर्धपक्व फल–रेचक है, यह विबन्ध पर दिया जाता है। पक्व शुष्क फल की छाल ग्राही, संकोचक, कफ नाशक तथा कण्ठ एवं श्वासनलिका पर विशेष कार्यकारी है। इसे अतिसार व प्रवाहिका में देते हैं।

(1) प्रतिश्याय, कास, श्वास, स्वरभंग में–इसकी छाल के टुकड़े को मुख में रखकर चूसते रहने से कफ सरलता से निकल कर लाभ होता है।

1. इस विषय में मतभेद है–सुश्रुत सू0 स्था0 44 में इसे अनुष्ण (न शीत न उष्ण) तथा 46 अ0 में उष्ण लिखते हैं। धन्वन्तरि चक्रपाणि, राजबल्लभ, नरहरि व हेमाद्रि इसे उष्ण कहते हैं। वाग्भट्ट ने इसे शीत लिखा है। अरुणदत्त ने भी शीत वीर्य माना है। मालूम होता है इस मतभेद के समीकरण के लिये ही भावमिश्र, मदनपाल और केयदेव ने इसके विषय में लिखा है कि यह स्पर्श में तो शीत है किन्तु वीर्य में उष्ण है।

(2) सद्योव्रण में इसके चूर्ण को बुरकने से रक्तस्राव रुक जाता है।

(3) नेत्राभिष्यन्द में–इसका लेप नेत्रों पर लगाते हैं। वेदनायुक्त विकारों पर भी इसका लेप किया जाता है। आंत्रवृद्धि पर भी इस लेप से शीघ्र लाभ होता है।

(4) नपुंसकता पर–छिलकों के चूर्ण 6 माशा में समभाग गुड़ मिलाकर प्रतिदिन सेवन से कामोद्दीपन होता है।

(5) भिलावे के विष प्रकोप पर–फल के गूदे को जल में पीसकर लेप करते, अथवा इसके गूदे के साथ मुलैठी, नागरमोथा और चंदन को जल में पीसकर लेप करते हैं।

(6) भ्रम या चक्कर पर–फल के छिलके के जौकुट चूर्ण 6 माशा में समभाग जवासा चूर्ण मिला, क्वाथ पकाकर उसमें घृत मिलाकर पिलाते हैं।

(7) कास श्वास पर–फल का छिलका 5 तोला, लवंग, अनार का छिलका, कत्था प्रत्येक 2½ तोला, कालीमिर्च 1 तोला और कपूर 6 माशा, सबको कूट पीसकर रख लेवें। इसमें से 6 माशा लेकर एक पत्थर या कांच की प्याली में शहद 2 तोला व अदरख का रस 6 माशा मिलाकर 7 बार में थोड़ा–थोड़ा चाटने से खांसी शीघ्र ही दूर होती है।

अथवा–अच्छे पक्व शुष्क फलों के ऊपर घृत चुपड़ कर ऊपर से गेहूं का आटा जल में सानकर चारों ओर मोटा–मोटा लेप कर, धीमी आंच पर पकावें। ऊपर का आटा रोटी जैसा पक जाने पर निकाल कर, फलों के छाल के टुकड़े कर रखें। 1–1 टुकड़ा मुख में धारण कर चूसते रहने से खांसी शीघ्र दूर होती है। यह श्वास को भी दूर करता है।

नोट–गेंहूं के आटे के स्थान में गाय का गोबर उक्त घृत से चुपड़े हुए फलों पर लपेट कर कण्डों की मन्दाग्नि में दबा दें। अच्छी तरह स्वेदित हो जाने पर निकाल कर उनकी ऊपरी छाल को उतार रखें। इसका टुकड़ा चूसने से भी वही लाभ होता है। –शार्गंधर

इस स्वेदित छाल का चूर्ण बनाकर 2 माशा तक की मात्रा में मधु से चटाने से श्वास व काली खांसी भी दूर होती है। दिन में 3 बार चटावें। –स्वानुभूत

अथवा–फलों की छाल को घृत में भूनकर चूर्ण बना उसे अड़ूसा के पत्रों के रस में (72 घंटे) खरल कर उसका गोला बनाकर, आक के पत्तों में लपेट कर उस पर आधा अंगुल मोटा मिट्टी का लेप कर शुष्क कर कण्डों की मन्दाग्नि में रख दें। ऊपर की मिट्टी का लेप जब लाल हो जाय, तब गोले को निकाल कर, ठण्डा कर ऊपर की मिट्टी दूर कर भीतर से बहेड़े के गोले को निकाल कर पीसकर रखें। इसमें से थोड़ा–थोड़ा चूर्ण मुख में रखकर चूसने से खांसी अवश्य नष्ट होती है। –हा0 सं0

अथवा–फल की छाल का चूर्ण 2 भाग तथा पिप्पली का चूर्ण 1 भाग एकत्र मिलाकर रखें। 2–3 माशा की मात्रा में शहद के साथ चाटने से भी खांसी दूर होती है।

केवल छाल का चूर्ण 3 माशा तक की मात्रा में शहद के साथ मिलाकर भोजन के बाद सेवन से कास व श्वास में लाभ होता है। –रा0 भा0

अथवा–फल की छाल के साथ अतीस, नागरमोथा, पिप्पली, भारंगी व सोंठ समभाग का चूर्ण कर 3 माशा तक की मात्रा में मधु या उष्ण जल के साथ दिन में 2 बार नियम से पथ्यपूर्वक सेवन से कास, श्वास तथा अपतंत्रक में भी शीघ्र लाभ होता है। –ग0 नि0

नोट–इस योग को बांसारिष्ट के साथ देने से श्वास व फुफ्फुस विकार नष्ट होते हैं।

अथवा–फल की छाल के चूर्ण को समभाग बकरे के मूत्र में पकावें। गाढ़ा हो जाने पर, उतार चिकने पात्र में भर रक्खें। 3 माशा तक की मात्रा में शहद के साथ चाटने से कास, श्वास तथा प्रवृद्ध कफ का नाश होता है।

–बं0 से0, वै0 जी0, यो0 र0

नोट–उक्त योग को इस प्रकार भी बनाते हैं–छाल के महीन चूर्ण में समभाग बकरे का मूत्र मिलाकर, बहेड़े की लकड़ी के डंडे से खूब खरल करें। शुष्क हो जाने पर पुनः उतना ही बकरे का मूत्र मिलाकर घोटें। इस प्रकार 7 भावनायें देकर छायाशुष्क कर, महीन पीस शीशी में रखलें। मात्रा 1 से 3 माशा तक शहद के साथ 4–4 घंटे से दिन में 3–4 बार देने से क्षयज कास, कुक्कुर कास में तुरन्त लाभ होता है। खांसी के लिए यह एक सर्वोत्तम योग है। निमोनियाँ की खांसी एवं फुफ्फुस प्रदाह में उक्त चूर्ण 1 माशा, अभ्रक भस्म निश्चन्द्र शतपुटी ½ या 1 रत्ती, मृगश्रृंग भस्म 2 रत्ती, तथा मुलैठी चूर्ण 4 रत्ती (यह 1 मात्रा है) के मिश्रण को 1 बार में मधु या उष्ण जल से देवें। प्रति 3 घंटे के अन्तर से 3 बार में देने से निश्चय ही सफलता प्राप्त होती है। –धन्वन्तरि के गुप्त सिद्ध प्रयोगांक भाग 2 से

अथवा कास, श्वास पर–फल का शुष्क गूदा और अनार का छिल्का 3–3 ग्राम, काली मिर्च 6 दाने तथा सेंधा नमक 1½ ग्राम एकत्र पीसकर 3 मात्रायें बना, दिन में 3 बार उष्ण जल से देवें, शीघ्र लाभ होता है। या उत्तम स्वच्छ फलों के छिलकों को दूने गोदुग्ध में भिगोकर 24 घण्टे बाद दूध से निकाल, भली प्रकार सुखाकर, महीन चूर्ण कर 1 से 2 ग्राम तक की मात्रा में मधु या उष्ण जल से देने से अनेक प्रकार की खांसी, श्वास, दमा में लाभदायक है। चिकने गरिष्ठ एवं शीत गुण वाले पदार्थ न लेवें। पीने के

लिये गुनगुने जल का प्रयोग करें। हठीली खांसी भी नष्ट हो जायेगी। —श्री वैद्य चुन्नी लाल भारद्वाज
176, खारी कुआं, मेरठ शहर

अथवा—फल का छिलका 20 तोला तवे पर रख धीमी आंच पर सेंक महीन चूर्ण कर उसमें 1 तोला नौसादर (तवे पर सेंका हुआ) का चूर्ण मिला, खरल कर, 1–2 माशा की मात्रा में शहद के साथ प्रातः सायं चाटने से पुरानी खांसी व श्वास नष्ट होता है।

श्वास पर—फलों का छिलका 1 सेर लेकर 3 सेर जल में पकावें। 2 सेर जल शेष रहने पर छानकर उस जल को एक मिट्टी की हांडी में भरकर पुनः आग पर चढ़ा उसमें शुद्ध नीला थोथा 1 माशा, अडूसा का क्षार, अपामार्ग का क्षार व नागकेशर प्रत्येक 1½ तोला एकत्र मिला पोटली में बांधकर हांड़ी में लटका देवें (दोला यंत्र की तरह पाक करें) मटकी का सब जल शुष्क हो जाने पर पोटली को बाहर निकाल सुखाकर पीसकर शीशी में सुरक्षित रखें।

ग्लूकोज या बताशे में ½ रत्ती पिपरमैंट घोंटकर उसमें उक्त क्षार 4 रत्ती मिला प्रातः सायं चटाने से श्वास दमा रोग 7 दिन में अवश्य ठीक हो जावेगा।

—गुप्त प्रयोग (अ० चिकित्सक)

तमक श्वास (कफादिक श्वास रोग) पर—फलों का छिल्का 1 सेर का महीन चूर्ण बना लेवें। फिर बबूल वृक्ष की अन्तर छाल, अपामार्ग पंचांग, कटेरी पंचांग 1–1 सेर व भिलावा 20 तो० लेकर जौकुट कर 15 सेर जल में पकावें। साढ़े तीन सेर क्वाथ शेष रहने पर छानकर पुनः पकावें। गाढ़ा होने लगे तब उक्त बहेड़े का चूर्ण मिलाकर गाय या भैंस के घृत में अच्छी तरह सेंक कर उसमें कुटे हुये तिल आध सेर तथा समान भाग बूरा (शक्कर) मिला 2½ तोला के लड्डू बना लें। यह लड्डू बलानुसार गरम दूध से सेवन करावें। आशातीत लाभ होगा। अनुभूत है।

—आचार्य सच्चिदानन्द जी दाधीच (रसायन)

(8) कण्ठ के विकार, स्वरभंग तथा अत्यधिक लालास्राव पर—कण्ठशोथ या गल शोथ पर—फल का छिलका, अनार का छिलका, जवाखार और पिप्पली, समभाग एकत्र चूर्ण कर, गुड़ मिलाकर बेर जैसी गोलियां बनाकर चूसते रहने से लाभ होता है।

कण्ठ में व्रण हो तो आग में भूने हुए फल के छिलके को मुख में रखकर धीरे–धीरे चूसते रहने से लाभ होता है।

स्वरभंग या गले का बैठ जाना—फल का गूदा, कांजी, पिप्पली और सेंधानमक इनके अत्यन्त महीन चूर्ण को कांजी में मिलाकर चाटने से या मक्खन में मिलाकर चाटने से लाभ होता है।

लालास्राव—मुख से अधिक लार के बहने या कफ स्राव होने पर—फल के गूदे (वा छाल) का चूर्ण 1½ माशे में समभाग शक्कर मिला मुख में रखते हैं।

कफस्राव होता हो तो भूने हुए 1 फल के छिलके का आधा भाग दिन के भोजन के बाद एक लगे हुए पान के बीड़े में रखकर तथा इसी प्रकार शेष आधा भाग शाम के बाद खाने से कुछ दिनों में कफ स्राव होना दूर हो जाता है। साथ ही बल की भी वृद्धि होगी।

(9) अतिसार, नाभी टलना तथा पांडु रोग पर—अतिसार पर—फलों को जलाकर, उसकी भस्म में सेंधानमक मिलाकर सेवन करने से प्रवृद्ध तीव्र अतिसार भी दूर हो जाता है। मात्रा 3 माशा दिन में 2–3 बार। —बं० से०

नोट—इसका प्रयोग इस प्रकार करें—फलों की भस्म 1 तोला में सेंधानमक चूर्ण 3 माशा मिलाकर इसकी 4 मात्रायें बना, 4–4 घण्टे से 1–1 मात्रा अनार के रस से या बेल के शर्बत के साथ या केवल जल से देवें। उत्तम सरल लाभकारी प्रयोग है।

नाभी टलने पर (आंत्र की गिंडली उचित स्थान पर न रहने को नाभि टलना कहते हैं)—बहेड़े का क्वाथ 1–1 घण्टे के अन्तर से 3–4 बार पिलाने से नाभि उचित स्थान पर स्थिर हो जाती है तथा तज्जन्य अतिसार भी बन्द होता है।

—गां० औ० र०

पांडु रोग पर—(विभीतकाद्यावटक)—बहेड़ा (फल की छाल), मण्डूर भस्म, सोंठ और तिलका चूर्ण समभाग में सबके बराबर पुराना गुड़ मिलाकर (6–6 माशा के) मोदक बना लेवें। 1–1 मोदक प्रातः सायं तक्र के साथ सेवन से भयंकर पांडु भी नष्ट हो जाता है। —ग० नि०

नोट—पांडु रोग पर 'विभीतकाख्य लवण' का प्रयोग आगे विशिष्ट योगों में देखिये।

(10) ज्वर पर—विषम ज्वर हो तो बहेड़ा, अमलतास, कुटकी, त्रिफला और हल्दी का क्वाथ सेवन कराने से तृषा, दाह व विषमज्वर में लाभ होता है। —ग० नि०

पित्त कफज ज्वर में—बहेड़ा और जवांसे के क्वाथ में थोड़ा घृत मिलाकर पिलातें हैं। इससे आंखों के आगे अंधेरा आना, भ्रम (चक्कर) आदि विकार भी दूर हो जाते हैं।

वात कफज ज्वर में—इसका चूर्ण 4 मा० की मात्रा में दिन में तीन बार शहद के साथ चटाते हैं।

(11) हृदय के विकार तथा नेत्र विकार पर—बहेड़ा तथा असगन्ध के समभाग चूर्ण में पुराना गुड़ मिलाकर (3–4 माशा की मात्रा में) पकाये हुए सुखोष्ण जल के साथ सेवन से हृदयगत दूषित वात एवं तज्जन्य हृदय के विकार नष्ट हो जाते हैं। —बं० से०

नेत्र विकारों पर–(विभीतकादि घृत) बहेड़ा, हरड़, आमला, परवल, नीम की छाल और अडूसा समभाग एकत्र जौकुट कर 2 सेर चूर्ण को 16 सेर जल में पका, 4 सेर जल शेष रहने पर छान लेवें तथा उसमें उक्त 6 द्रव्यों को एकत्र 6 तोला 8 माशा लेकर जल के साथ पीसकर बनाये गए कल्क को और 1 सेर गोघृत (अभाव में भैंस का घृत) मिलाकर पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर छानकर रख लें।

1 या 2 तोला घृत को प्रातः सायं गोदुग्ध के साथ सेवन से समस्त नेत्र रोग नष्ट होते हैं। –यो0 र0

तिमिर नाशक–(विभीतकादि तैल) उक्त घृत के प्रयोग के 6 द्रव्य समभाग मिश्रित 13 तोला 4 माशा का कल्क कर अरहर के 8 सेर क्वाथ (क्वाथार्थ अरहर 4 सेर जौकुट कर 32 सेर जल में चतुर्थांश क्वाथ करें) तथा 2 सेर तिल तैल में एकत्र मिला तैल सिद्ध कर लेवें। इस तैल के सेवन तथा सिर पर मालिस व नेत्रों में लगाने से तिमिर रोग (दृष्टिगत द्वितीयपटल में दोषज दृष्टिमांद्य Amaurosis) नष्ट होता है। –बं0 से0

नेत्र पाक पर–उक्त प्रयोगों के 6 द्रव्यों के क्वाथ में शुद्ध गूगल मिलाकर सेवन से शोथ एवं शूलयुक्त नेत्र पाक (Ophthalmia) में लाभ होता है। –वृ0 मा0

(12) कर्णस्राव तथा केशपात पर–कान से पूय का बहना–बहेड़ा, बच, कूठ तथा मैनसिल का चूर्ण 2–2 तोला तथा तिल तैल 1 सेर और जल 4 सेर एकत्र मिलाकर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान कर रख लें। इसे कान में डालते रहने से शीघ्र ही (विशेषतः बालकों का) पूति कर्ण रोग दूर होता है। –बं0 से0

इस तैल से अन्य कर्ण रोगों में भी शीघ्र लाभ होता है।

केशपात–सिर के बाल झड़ते हों तो बहेड़े के चूर्ण को जल में भिगोकर सिर पर मर्दन करें 15 मिनट बाद जल से धोकर साफ कर भृंगराज तैल (भांगरे का तैल) प्रतिदिन प्रातः लगा लिया करें, शीघ्र ही बालों का झड़ना बन्द हो जाता है।

(13) ग्रन्थि, विसर्प तथा बदगांठ पर–ग्रन्थि विसर्प (कफ वातज विसर्प Erysipelas) इसमें शरीर पर छोटी मोटी अनेक गांठें निकलती हैं। गांठों में वेदना होती तथा मोह, भ्रम, व्याकुलता, अग्निमांद्य, कास, श्वास, अतिसार, कण्ठशोष, वमन किसी को हिक्कादि लक्षण उत्पन्न होते हैं। नव्य मतानुसार यह कीटाणुजन्य माना गया है। (पर बहेड़े के चूर्ण का मोटा लेप करें या पुल्टिस बांधें व ऊपर से सेंक करें लाभ होता है। साथ–साथ उदर सेवनार्थ हरड़ व चिरायते का क्वाथ या अन्य औषधि भी देनी चाहिये। –गां0 औ0 र0

बद की गांठ पर–फल के छिलकों को रेंडी तैल में भून कर तेज सिरके में पीसकर लेप करते रहने से 2–3 दिनों में गांठ बैठ जाती है। –यूनानी प्रयोग

बीजों की गिरी या मज्जा–लघु, कषाय, मधुर, उष्ण वीर्य, कटु विपाक, प्रभाव में मादक तथा कफ वात नाशक, तृषा, वमन, कास, श्वास, हिक्का, वेदना, शोथादि में उपयोगी है। इसका मद या नशा साधारण अफीम के समान होता है, इसकी नशा की बेहोशी में ऐसा मालूम होता है, मानों गहरी नींद में सो रहा हो। यह सद्योमारक नहीं है, अधिक मींगी या गिरी खने से वामक है एवं जो कुछ विष प्रभाव होता है, वह भी उक्त प्रकार का साधारण नशा होता है। न्याय वैद्यक में क्वचित् ही इससे बालकों की मृत्यु के उदाहरण मिलते हैं।

यह गिरी नासिका तथा नेत्र के विकारों को नष्ट करने वाली, कृमि नाशक, केशों के लिये परम हितकर है। अनिद्रा में इसका प्रयोग करते हैं। गिरी का लेप शोथ, दाह, वेदना तथा खुजली पर भी करते हैं।

(14) वमन, तृषा तथा पित्त ज्वर पर

–वमन पर–इसकी गिरी मुनक्का व छोटी इलायची 10–10 ग्राम तथा पौदीना सत्व 1½ ग्राम एकत्र थोड़े जल के साथ खरल कर ¼ ग्राम भार की गोलियां बना कर ताजे जल के साथ (1–2 गोली) देवें।

–श्री वैद्य चुन्नीलाल जी भारद्वाज

अथवा–इसकी 1 से 3 गिरी तक शहद में घिसकर दिन में 2–3 बार चटावें।

तृषा पर–इसकी 3 या 5 गिरी 1–2 तोला जल में 3–3 घंटे से। पीसकर पिलावें।

पित्त ज्वर की व्याकुलता निवारणार्थ–गिरी को जल या ठण्डे दूध के साथ चटनी जैसा पीसकर शरीर पर लगाने से दाह, व्याकुलता एवं अधिक उत्ताप की शांति होती है।

(15) नेत्र के विकारों पर–इसकी गिरी 2 भाग, आमले की गुठली की गिरी 3 भाग और हरड़ की गुठली की गिरी 1 भाग, सबको गुलाब जल के साथ खरल कर वटी बना लेवें। इसे प्रातःसायं में आंजने से नेत्रस्राव, तिमिर, वातज एवं रक्तज नेत्र पीड़ा दृष्टिमांद्य आदि शीघ्र ही दूर होते हैं। –भा0 प्र0

तिमिर पर–इसकी गिरी, काली मिर्च, आंवले का गूदा, नीला थोथा (फुलाया हुआ) और मुलैठी को जल से पीसकर वर्ती बना छायाशुष्क कर रक्खें। इसे नेत्र में आंजने से शीघ्र लाभ होता है। –बा0 भ0

पित्तज पटल रोग पर–इसकी गिरी, शंखनाभि और सेंधा नमक समभाग का महीन चूर्ण कर, उसे कांजी में घोट कर और समभाग गुड़ में मिला बत्तियाँ बना लें। इसे आंख में आंजने से लाभ होता है। –हा0 सं0

आंखों का फूला–गिरी को स्त्री दुग्ध में या शहद में प्रतिदिन रात के समय आंजने से लाभ होता है।–भै0 र0

नेत्राभिष्यन्द (आंख आना) पर–गिरी को बकरी के दूध में घिसकर प्रातःसायं लगाते हैं।

(16) अश्मरी आदि मूत्र विकार तथा शोथ, ग्रंथि आदि पर–इसकी गिरी तथा खरेंटी मूल, गोखुरू, कौंच के बीज, तालमखाना, चावल, देवदारु तथा चित्रक सम भाग मिश्रित जौकुट कर, उसमें से 2 तोला लेकर शीतल जल के साथ पीसकर, कल्क बना मधु के साथ सेवन से सभी प्रकार के मूत्र दोषों की शुद्धि एवं अश्मरी का नाश होता है।

–सु0 उ0 अ0 58

अथवा–इसकी गिरी को जवाखार के साथ पीसकर जल के साथ पिलाते हैं तथा ऊपर से ताजा जल अधिक मात्रा में पिलाते हैं। उससे भी मूत्राश्मरी एवं वृक्काश्मरी में लाभ होता है।

शोथ ग्रन्थि आदि पर–इसकी गिरी को थोड़े जल के साथ पीसकर सर्व प्रकार की शोथ, पीड़ा, दाह एवं ग्रन्थि पर लेप करने से लाभ होता है। ग्रन्थि पर लगाने के लिए लेप या कल्क को कुछ गरम कर लेवें।

अग्निदग्ध स्थान पर भी उक्त प्रकार का लेप दाह को शांत करता है।

नोट–बहेड़े के गुठली की गिरी के स्थान में आमले की गुठली की गिरी ले सकते हैं। दोनों के गुण, धर्म एक समान ही हैं। –भा0 प्र0

बीज गिरी का तैल–इसके गुण, धर्म उपर्युक्त गिरी के अनुसार ही हैं। यह गुरु, स्वादु, शीतल, वीर्यवर्धक कांतिवर्धक, कफजनक, वातपित्तनाशक, अग्निमांद्य, चर्मश्वेतकुष्ठ, पालित्य (केशों का पकना, श्वेत होना) शोथ, दाह, खुजली नाशक तथा केश्य (केशों को पुष्ट करने वाला) है।

(18) केशों को हितकारी–इस तैल को केशों में लगाने से उनका झड़ना या टूटना, बन्द होता तथा केश श्याम, काले, सघन एवं सुदीर्घ होते हैं। नियमित प्रतिदिन लगाते रहने से केश अकाल में ही श्वेत नहीं हो पाते हैं।

(19) आमवात पर–वेदनायुक्त अंगों पर इस तैल के मर्दन से वेदनायुक्त शोथ नष्ट हो जाता है।

–श्री वैद्य चुन्नीलाल जी भारद्वाज

खुजली आदि चर्म रोगों पर तथा श्वेतकुष्ठ पर भी यह लगाया जाता है।

छाल–वृक्ष की छाल–रक्ताल्पता पांडु रोगों, अतिसार श्वेतकुष्ठ आदि में उपयोगी है।

(20) अतिसार में–छाल के महीन चूर्ण में लौंग का चूर्ण मिलाकर 1 से 2 मा0 की मात्रा में दिन में 2 बार चटाते हैं।

(21) श्वेतकुष्ठ तथा पुण्डरीक कुष्ठ पर–वृक्ष की छाल तथा काकोदुम्बर (कठगूलर) की जड़ की छाल समभाग जौकुट कर 2½ तोला चूर्ण को 20 तोला जल में 12 घण्टे भिगोकर चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर उसमें 1 तोला पुराना गुड़ मिला बावची बीज के चूर्ण का 12 रत्ती प्रक्षेप देकर नियमित, पथ्यापथ्य के पालनपूर्वक सेवन करने से श्वेत कुष्ठ एवं पुण्डरीक कुष्ठ (यह महाकुष्ठ का एक भेद है) दोनों में लाभ होता है। –भै0 र0

नोट–मात्रा–फल (गूदे सहित शुष्क फल के छिलके का) चूर्ण 1 से 6 माशे तक। ध्यान रहे प्रयोगों में जहाँ जहाँ फल का छिलका लिखा है, वहां वह गूदे सहित ही लिया जाता है। क्वाथ 3 से 5 तोला तक। तैल 3–5 बूंद। इसका अधिक सेवन आंत्र एवं गुदा के लिए हानिकर है। हानि निवारक शक्कर तथा शहद है। इसके प्रतिनिधि आंवला, काली हरड़ तथा मेंहदी की कली है।

विशिष्ट योग :

(1) विभीतकासव (सीधु)–बहेड़े के क्वाथ में गुड़ और धाय के फूलों को मिला कुछ दिन रखते हैं। बाद में जो सीधु (आसव) तैयार होता है, वह पाण्डुरोग नाशक, व्रणों के लिये हितकर, संग्राही, कषाय, मधुर, पित्त नाशक तथा रक्त प्रसादन है। –सु0 सू0 अ0 45

(2) विभीतकाख्य लवण–(माण्डूर लवण) मण्डूर को बहेड़े की अग्नि में तपा–तपा कर आग के समान लाल कर बार–बार गौमूत्र में बुझावें। इसका चूर्ण हो जाने पर उसमें समभाग सेंधानमक व सबसे चौगुना गौमूत्र मिला, सबको मटकी में भर मुख मुद्रा कर चूल्हेपर चढ़ा, नीचे बहेड़े की लकड़ी की आग लगावें। समस्त गौमूत्र जल जाने पर अग्नि देना बन्द कर स्वांग शीतल हो जाने पर मटकी में से औषध को निकाल पीसकर रख लेवें। मात्रा 1 से 3 माशा तक तक्र या शहद के साथ सेवन से पांडु नष्ट होता है। पाण्डु रोग के लिए यह सर्वोत्तम प्रयोग है।

–रसराज सुन्दर से

(3) मुरब्बा बहेड़ा–इसके फलों में 8 गुना जल मिला, कलईदार पात्र में भर आग पर पकावें। जब जल लगभग आधा रह जावे तब बहेड़ों को अलग निकाल कर उस जल में मिश्री मिला गाढ़ी चाशनी का पाक करें तथा उस पाक में उक्त पकाये हुये बहेड़ों को और थोड़ा पिप्पली चूर्ण मिला, उत्तम चिकनी मटकी या अमृतवान में भर रखें। यह मुरब्बा जितना जूना होगा उतना ही विशेष गुणदायक होगा। कास (खांसी के रोगी के लिये यह अधिक लाभकारी है।–ब0 गु0

बांझ–देखें–बलूत। बांध ककोड़ा–देखें–ककोड़ा बांझ। बांझ खेखसा–देखें–ककोड़ा बांझ। बांदरा–देखें–बनकंगनी।

बांदा बड़ा (Lorenthus Longiflorus)

गुडूच्यादिवर्ग एवं अपने ही बन्दाक कुल[1] (Loranthaceae) के प्रमुख इस आम, बबूल, महुआ आदि के वृक्षों पर पराश्रयी रूप से उत्पन्न होने वाले पौधे की शाखायें विविध आकार की, कोई सीधी खड़ी हुई 3–5 फुट लम्बी, किसी की शाखायें नीचे को लटकने वाली होती हैं। ये शाखायें चिकनी, पतली, धूसरवर्ण की; छाल–छाल भूरी मुलायम; पत्र–जिस पेड़ पर यह पैदा होता है, प्रायः उसी पेड़ के पत्तों के आकार प्रकार के किन्तु प्रस्तुत प्रसंग के बड़े बांदे के पत्र मोटे, चिकने प्रायः 3 से 10 इंच तक लम्बे, ½ से 5 इंच तक चौड़े ऊपर की ओर संकरे, चिमड़े अण्डाकार, प्रायः लसौड़े के पत्र जैसे किन्तु अधिक लम्बे व कम चौड़े; पत्रवृंत–½-1 इंच लबे कड़े होते हैं। पुष्प–कृष्णाभ लाल, नीले या श्वेत रंग के 1–2 इंच लम्बे, सपर्ण कोष नलाकार 1 से 4 इंच लम्बी कलगी पर बाह्यकोष की नली गोल ऊपर का भाग कप (प्याले) के आकार का, छोटे–छोटे 5 दांत वाला आभ्यन्तर कोष पीछे की ओर विदीर्ण सा पुंकेशर फल कुछ गुलाबी रंग के छोटे–छोटे खिरनी जैसे– ½ इंच लम्बे, अण्डाकृति, लसदार, एक बीजयुक्त होते हैं।

बांदा बड़ा (Loranthus Longiflorus Desr.)

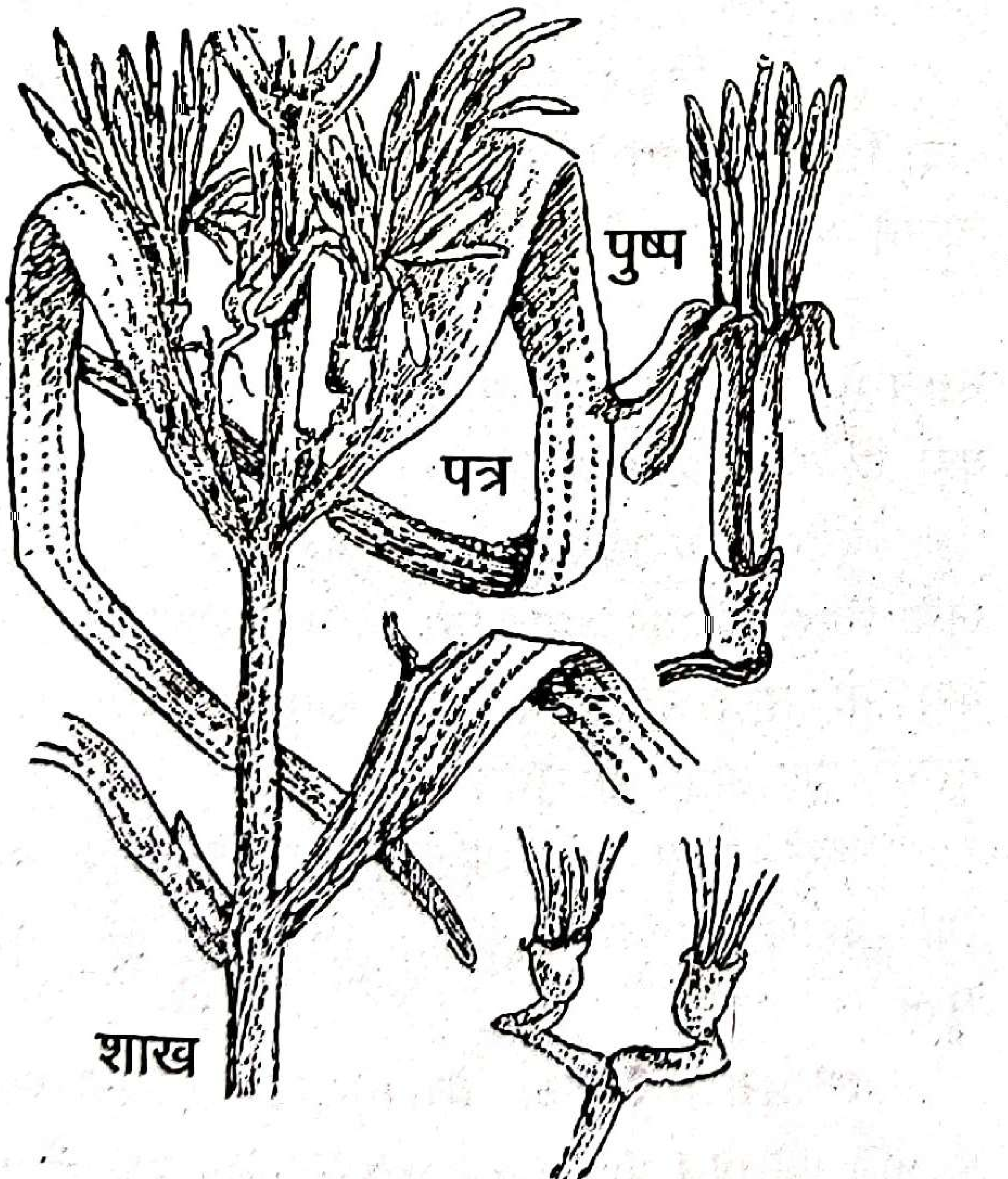

1. इस कुल के पौधों के पत्र–प्रायः अभिमुख, अखंड, मांसल, उपपत्र रहित, पुष्प–पुष्पाभ्यन्तर कोष के दल विभक्त या संयुक्त, पुंकेशर 4–8 अधःस्थ बीजकोष, फल, मांसल, एक या अनेक बीजयुक्त होते हैं तथा इस कुल के पौधे पराश्रयी होते हैं।

नोट–ये बांदा कहाने वाले पौधे प्रायः वृक्षों के उन ढाल आदि स्थानों पर पैदा हो जाते हैं, जहाँ खोखलापन या गढ़ा हो गया हो तथा उसमें कुछ मिट्टी या गर्द भर गई हो पक्षी के वहां बीट कर देने से पौधा उग आता है। कुछ दिनों तक उसी मिट्टी आदि से आश्रय प्राप्त कर वह फिर उस पेड़ की शाखा आदि का आश्रय कर उसी के रस से अपना पोषण करना प्रारम्भ कर देता है तथा जिस पेड़ पर यह होता है उसी पेड़ के नाम से पुकारा जाता है–आम का बांदा, बबूल, बड़ आदि का बान्दा कहाता है। यह जिस पेड़ पर हो जाता है,वह पेड़ फलोत्पत्ति में असमर्थ होकर प्रायः शीघ्र ही सूख जाता है। अतः पेड़ की रक्षा के लिये पेड़ के जिस स्थान पर यह पैदा होता है। उस स्थान को या भाग को सावधानी से काट दिया जाता है।

ये बान्दा नाम के पौधे–हिमालय के समशीतोष्ण एवं उष्ण प्रदेशों में 3 से 7 हजार फुट की ऊँचाई तक तथा उत्तर प्रदेश, गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, बिहार, पंजाब, मद्रास, आसाम आदि में तथा प्रायः सर्वत्र ही पाये जाते हैं।

नोट–इसकी अनेक जातियाँ हैं– छोटा बान्दा (Loranthus Globusus), किसमिस काबुली (Viscum Album) आदि मुख्य–मुख्य 5–6 जातियों का वर्णन आगे के प्रकरणों में क्रमशः क्रमशः देखिये।

चरक के मूत्रविरेचनीय, हिक्का निग्रहण, शुक्रजनन में तथा सुश्रुत के वीरतर्वादिगणों में एवं चुच्चू, यूथिकादि शाकों के साथ भी इसकी गणना की गई है और कहा है कि इसका शाक वातनाशक होता है। –सु0 सू0 अ0 46

और अश्मरी, गर्भरक्षा, आमपाचनादि प्रयोगों में यह लिया गया है।

रास्ना कुल (Orchidaceae) के बंगदेशीय रास्ना (Vanda Roxburghii) को भी पराश्रयी होने से बान्दा कहा जाता है। रास्ना का प्रकरण यथास्थान देखिये।

नाम :

सं0–वन्दाक, वन्दा, वृक्षादनी (वृक्षों को खाने वाला), वृक्षरुहा इ0। हि0–बांदा (बड़ा), बन्दा, परगाछा, अमुट, पांड़ा इ0। म0–बांडगुल, बांदोलें। गु0–बांदो। बं0–मान्दा बड़ा। अं0–पारासाईट आफ दी ट्री (Parasite of the Tree) ले0–लारेन्थस लांगिफ्लोरस, डेंड्राफथी फेलकेटा (Dendrophthoe Falcata)।

प्रयोज्यांग–पत्र, पुष्प, फल, पंचांग।

गुणधर्म व प्रयोग :

लघु, रूक्ष, कषाय, तिक्त, मधुर, कटु विपाक, शीतवीर्य,

त्रिदोष शामक, संग्राही, स्तम्भन, हृद्य, दीपन, कफघ्न, वीर्यवर्धक, रसायन, रक्तशोधक, नाड़ीबलदायक, मूत्रल, आक्षेपशामक, गर्भस्थापक, मस्तिष्क संशोधक, व्रणरोपण, वशीकरण को सिद्ध करने वाला तथा उन्माद, अपस्मार, प्रवाहिका, अतिसार, रक्तातिसार, हृद्रोग, रक्तविकार, शोथ, कास, श्वास, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मासिकधर्म सम्बन्धी कष्ट, विषविकार, भूतबाधा आदि में उपयोगी है।

जिस जाति के वृक्ष पर यह होता है, प्रायः उसी के गुण धर्म इसमें पाये जाते हैं।

डॉ0 देसाई के मतानुसार इसके पत्र व पुष्पों को पीस गरम कर शोथ तथा मन्द रक्तगुल्म पर बांधने से शोथ दूर होता है।

हृद्रोग जन्य श्वास, क्षयरोग जन्य श्वास तथा कफ के साथ होने वाले रक्तस्राव, अपस्मार, उन्माद और आशुकारी दाह (फुफ्फुस प्रदाह) शोथ आदि रोगों पर इसके पुष्पों का प्रयोग किया जाता है। इन रोगों में पुष्पों की क्रिया प्रथम रक्तवाहिनी एवं हृदय पर होकर, उनके द्वारा लाभ पहुंचता है। ज्वर में भ्रम होने पर यह औषधि दी जाती है।

हृद्रोग में–हिक्का और मूत्र की जलन इसके सेवन से कम होते हैं।

शोथ, व्रण व क्षत में इसका लेप करते हैं। बालकों के मुखपाक में–इसके पत्रों को महीन पीसकर बुरकते हैं। रगड़, रक्तातिसार तथा रक्त निष्ठीवन में पत्तों को जल में पीस छानकर पिलाते हैं।

(1) रक्त निष्ठीवन तथा कफ के साथ रक्त आने पर व श्वास पर–इसके पत्तों को गिलेअरमनी (यह लाल रंग की एक प्रकार की नरम, चिकनी, किंचित सुगंधित, स्वाद में फीकी मिट्टी है, यह जिह्वा पर चिपक जाती है। यह ईरान की ओर से इधर आती है। इसके अभाव में सोना गेरू लेते हैं) के साथ पीसकर पिलाते हैं।

श्वास पर–नीम का बांदा, पत्र सहित कूटकर चिलम में रखकर धूम्रपान करने से 14 दिन में पूर्ण लाभ होता है।

(2) कर्णशूल पर–इसके पत्तों को केले के पत्र में लपेटकर भूभल में सेंककर, हाथों से मसलकर रस निचोड़, उसमें थोड़ा शहद मिला कान में डालने से कान के भीतर की फुंसी तथा शूल दोनों का निवारण हो जाता है। कान को शीतल जल व वायु न लगने देवें तथा रात्रि के समय 10–20 मिनट हल्का सेंक कर कपड़ा बांध देवें।

–गां0 औ0 र0

(3) अतिसार पर–बेर, आम, जामुन या बबूल के वृक्ष पर होने वाले बांदे के पत्तों का रस 1 से 3 तोला तक दिन में 3 बार सेवन कराते हैं। अतिसार में लाभ होता है।

(4) विषम ज्वर पर–बेल वृक्ष के बांदे के चूर्ण को तक्र या घृत के साथ सेवन से विषमज्वर के कष्टसाध्य विकार भी नष्ट हो जाते हैं। –भा0 भै0 र0

अथवा–कनेर या अन्य जहरीले वृक्ष पर के बांदे का चूर्ण तक्र, घृत, दही के घोल, मठे या हींग के साथ दिन में 2–3 बार देने से लाभ होता है। यह भ्रम, मन्द प्रलाप आदि को भी दूर करता है।

साधारण ज्वर पर–बड़े पत्तों वाले बांदे को जल के साथ पीसकर निकाले हुए रस को पिलावें। –ब0 गु0

(5) गर्भ धारणार्थ–गूलर (या बड़) वृक्ष पर के बांदे को कूट पीसकर निकाले हुए रस की 10–20 बून्दें, स्त्री को मासिकधर्म से शुद्ध होने पर चौथे दिन से नित्य प्रातः 3 दिन तक बकरी के दूध के साथ पिलावें। –वै0 म0

अथवा–बेर, अनार या बबूल के वृक्ष पर के बांदे को गाय के दूध के साथ पीसकर मासिक धर्म के बाद 13 दिन तक पिलाने से गर्भाशय शुद्ध होकर, गर्भधारण के योग्य हो जाता है। –ब0 चं0

अथवा–पलाश वृक्ष के ऊपर का बांदा रोहिणीनक्षत्र में लाकर, योनि में रखने से स्त्री गर्भधारण में समर्थ होती है।

(6) भग्नास्थि संधान के लिए–कहा जाता है कि इसके ताजे पत्रों को या पंचांग को कूट पीसकर निकाला हुआ रस पिलाने से टूटी हुई हड्डी जुड़ जाती है।

(7) नेत्र विकार पर तथा वशीकरणार्थ–सिरस वृक्ष का बांदा घिसकर उसके रस को स्त्री के दूध में मिला, नेत्रों में डालने से समस्त नेत्र रोग दूर होते हैं।

वशीकरणार्थ–सिरस के ही वृक्ष का बांदा, अश्विनी नक्षत्र में लाकर जल के साथ घोटकर पीवें तो जिसको चाहे वही दृष्टिमात्र से वश में हो जाय। –संकलित

पुष्प के गुणधर्म–उपर्युक्तानुसार ही है। ये हृद्विकार जन्य श्वास, हिक्का, क्षय जन्य श्वास, फुफ्फुस शोथ, रक्तपित्त, कफ के साथ रक्तस्राव होना, अपस्मार, उन्माद, मूत्रदाह, नूतन शोथ आदि में उपयोगी हैं।

फल–कास तथा अतिसार पर–फलों का अंजीर के साथ क्वाथ बनाकर पिलावें।

मूल :

शीतला (मूसरिका, चेचक) पर–सहिंजना के वृक्ष पर के बांदे की जड़ को लाकर उस पर कपड़मिट्टी कर, गरम राख (भूभल) में दबाकर उसके गरम हो जाने पर 2–4 बूंद रस निचोड़ कर उसमें गूलर के पत्तों पर की छोटी–छोटी ग्रन्थियों के (या पत्र रस के ही) रस को और गौरोचन ¼ रत्ती तथा शहद मिलाकर चटाने से चेचक का जोर कम हो जाता है। ध्यान रहे इस प्रयोग को जिस दिन चेचक का

ज्वर चढ़ता है, उसी दिन नहीं देना चाहिए । अन्यथा इस योग की जितनी बूंदें दी जावेंगी उससे तीन गुना अधिक चेचक के व्रण शरीर पर उठेंगे। —ब0 गु0

बिच्छू के विष पर—मूल को जल में घिसकर, गरम कर लेप करते हैं।

अधिक मात्रा में—विबन्ध कारक है। निवारणार्थ—काली मिर्च तथा शहद।

तन्त्र ग्रन्थों में बांदा के तांत्रिक प्रयोग वशीकरण, भूतबाधा आदि पर विस्तार से वर्णित हैं। अर्श, रक्तार्श, रक्तातिसार के निवारणार्थ कहा जाता है कि रविवार के दिन सूर्योदय के पूर्व इसकी शाखा को तोड़कर, उसके मध्य भाग में रोगी अपने हाथों से 7 लाल धागे बांधकर रख ले। उसे लाभ हो जावेगा। इत्यादि कई प्रयोग तांत्रिक ग्रन्थों में देखिये।

लिसोड़ा (बड़ा) वृक्ष का बांदा धनिष्ठा नक्षत्र में लाकर सोने चांदी के जेवरों में रख देने से वे सदैव बढ़ते एवं स्थिर रहते हैं। इसी बांदे को दूध या जल में घोटकर पीने से वात गुल्म दूर होता है। खाने तथा लगाने से श्वेत कुष्ठ में लाभ होता है। —संकलित

बांदा (छोटा) नं० 2 (Loranthus Globusus)

उक्त कुल के ही इस पराश्रयी सूक्ष्म रोमश, अनेक शाखा युक्त पौधे के पत्र उक्त बांदा नं0 1 के पत्र जैसे, किन्तु छोटे, पुष्प—हरिताभ पीत वर्ण के, सूक्ष्म लोमयुक्त पुष्पदण्ड $\frac{1}{3}$-$\frac{1}{2}$ इंच लम्बा, पुष्प कलिका लम्बी, चिपटी लाल वर्ण की, फल गोलाकार होते हैं।

दिसम्बर से मार्च तक पुष्प तथा मार्च से एप्रिल मास तक फल आते हैं।

यह बांदा समग्र बंगाल तथा खासिया आदि पहाड़ी प्रदेशों में पैदा होता है।

नाम :

हि0 व बंगला—बांदा छोटा। ले0—लोरेंथस ग्लोबुसस मेक्रोसोलैम—कोचिन चिनेंसिस (Macrosblem Coch in chinensis Lour)।

गुणधर्म व प्रयोग :

उक्त बांदा नम्बर 1 के जैसे ही।

बांदा छोटा (Loranthus Globusus Roxb.)

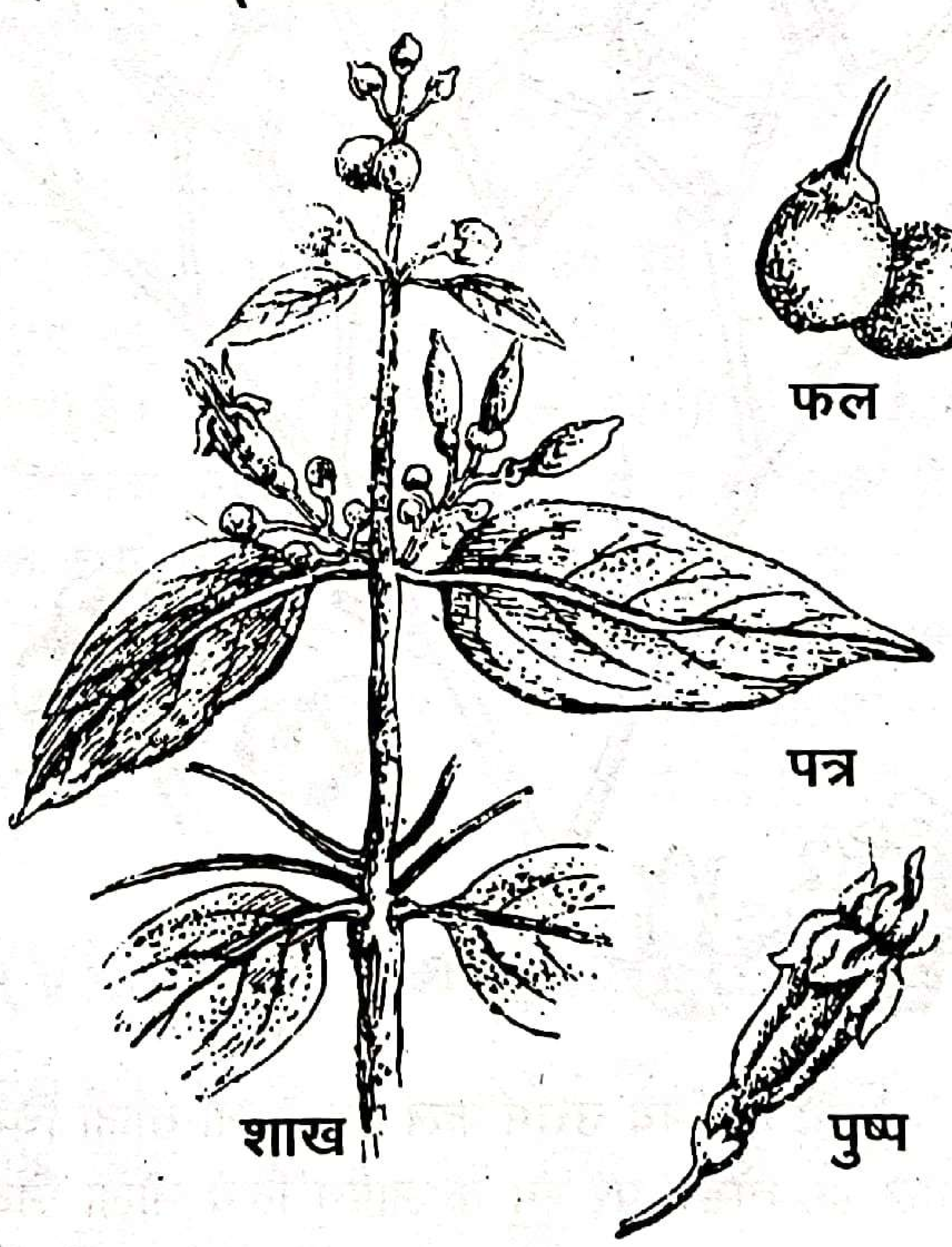

बांदा नं० 3 (चुल्लू का बांदा) (Viscum Album)

उक्त बंदाक कुल (Loranthaceae) के इस पराश्रयी क्षुप का काण्ड अनेक शाखायुक्त, नलिकाकार 2–3 फुट व्यास का पीला, हरा, शाखायें द्विविभक्त या चक्राकार क्रम से निकली हुई, पत्र—अभिमुख 1–2 इंच लम्बे, ½ इंच चौड़े, आयताकार या अनेक आकार के मोटे फीके हरे निम्न भाग में 3–5 शिराओं से युक्त वृन्तरहित; पुष्प—प्रति गुच्छों में 3–5 पुष्प; फल—साधारण गोल ¼ कइंच से कुछ अधिक व्यास के, श्वेत, चिकने, पारदर्शक ताजी दशा में हरे, सूखने पर कृष्णाभ भूरे रंग के, खसखस जैसे 1 बीज युक्त होते हैं।

पंजाब की ओर पुष्प मार्च से मई तक आते हैं तथा फल पाक नवम्बर मास में होता है।

यह हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशों में काश्मीर से नैपाल तक 3 से 7 हजार फुट की ऊँचाई पर तथा पंजाब व मद्रास के उच्च स्थानों में और पश्चिमी प्रदेशों में अटलांटिक तक पाया जाता है। अफगानिस्थान व ईरान में अधिक होता है। भारत में इसके शुष्क फल प्रायः ईरान और अफगानिस्थान से ही आते हैं।

नोट—यह बांदा बलूत, सेव, नासपाती, अखरोट, बादाम आदि विशेषतः तरुणी कुल (Rosaceae) के वृक्षों पर पैदा होता है। बलूत वृक्ष के बांदे का फल उत्तम माना जाता है।

इसके पत्तों का कहीं—कहीं रास्ना पत्र के नाम से व्यवहार किया जाता है।

बाजारों में इसके ईरान आदि से आए हुए सूखे तथा ताजे फल भी तथा भारत के ताजे फल भी किशमिश काबुली नाम से बिकते हैं। सूखे फल मटर जितने बड़े नरम, झुर्रीदार, भूरे रंग के मिलते हैं, इनके भीतर एक खसखस जैसा बीज तथा एक अत्यन्त ही चिपचिपा पदार्थ होता है।

बांदा नं० 3 (Viscum Album Linn.)

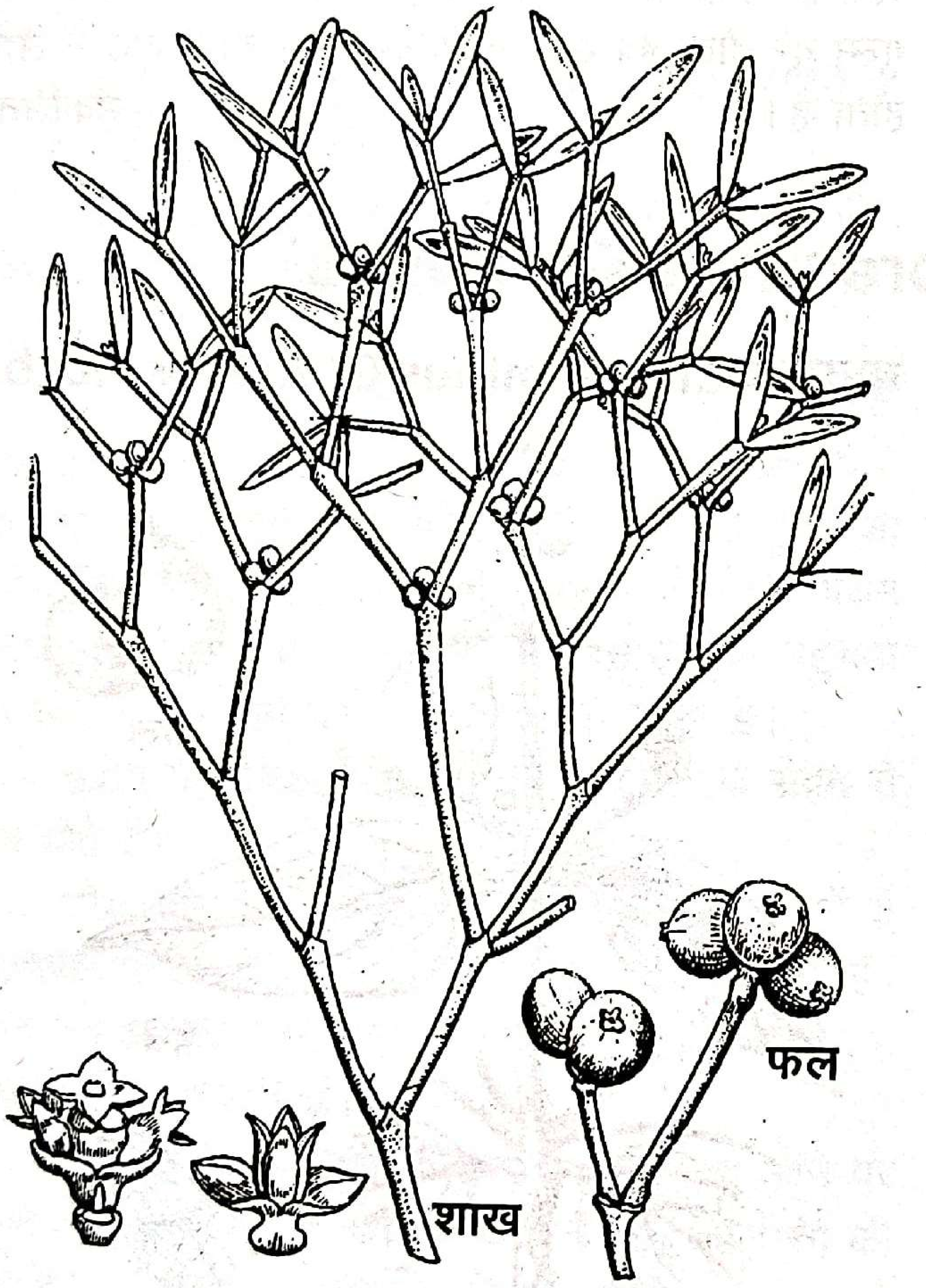

"औषधि के लिये उत्तम फल वह है जो ताजा चिकना और गोल हो, तोड़ने पर रंग कालापन लिये नीला निकले, तथा बाहर का रंग कुछ कुछ हरा, काला, नीला हो, ऊपर खुरदरा न हो और उस पर मूली की तरह कोई चीज न हो"।

—यूनानी द्रव्य गुण

नाम :

सं०—सुवर्ण वन्दाक, मौक्तिक फल। हि०—बांदा (चूल्लू), किशमिश काबुली, बन, बंदर जिंज, झिंझा, बंबल, रीनी इ०। म० गु० बं०—बांदा। अं०—मिस्टलेटो (Mistletoe)। ले०—व्हिस्कम एल्बम।

रासायनिक संगठन :

फल में विस्कीन (Viscin) नामक एक बहुत ही चिपचिपा द्रव्य होता है।

प्रयोज्यांग—फल।

गुणधर्म व प्रयोग :

उष्ण, रूक्ष, मधुर, कुछ अम्ल, सारक, पौष्टिक, कामोत्तेजक, हृद्य, मूत्रल, कफघ्न, ब्रणरोपक तथा हृद्रोग, जलोदर, शोथ, पित्त प्रकोप, यकृत प्लीहा वृद्धि, अपस्मार, कटिपीड़ा, गुल्म, अर्श, शारीरिक दौर्बल्य, मानसिक श्रम, व्रण, कर्णपूयादि में व्यवहृत होता है।

डॉ0 देसाई के मतानुसार—"अति प्राचीन काल से इस किशमिश काबुली नामक बांदे का उपयोग सब राष्ट्र करते हैं। इसकी क्रिया डिजिटेलिस के समान रक्ताभिसरण पर होती है। सूक्ष्म कोशिकाओं का संकोच होता है, हृदय को बल प्राप्त होता है। मूत्र अधिक आता है तथा जलोदर दूर होता है। यह औषधि इतनी उत्तम है कि इसे डिजिटेलिस का प्रतिनिधि माना जाता है।

गर्भाशय पर इसकी क्रिया अर्गट के समान ही नहीं प्रत्युत उसकी अपेक्षा उत्तम प्रकार की एवं प्रबल होती है अर्थात् इसके सेवन से गर्भाशय का संकोच जैसा व जितना चाहिए वैसा ही अत्युत्तम होता है। इसे सगर्भावस्था में देने से गर्भपात हो जाता है। इसमें सारक गुण अधिक है, यह शोथहर है।

अपस्मार आदि वातनाड़ियों के आक्षेपयुक्त रोगों में यह अति गुणदायक है। अत्यार्त्तव तथा प्रसव के पश्चात् होने वाले अतिरिक्त स्राव पर इसका पीपलामूल के साथ फाण्ट बनाकर पिलाना विशेष लाभदायक है। गुल्म रोग में इसका फाण्ट एरण्ड तैल व सौंठ मिलाकर दिया जाता है। इससे शौच द्वारा दूषित पित्त निकल जाता है। कटिशूल शमन होता अर्श रोग दूर होता तथा उदर की सब क्रिया का सुधार होता है। प्लीहा वृद्धि में भी यह लाभदायक है।

व्रणशोथ पर फलों को पीसकर पुल्टिस बांधते हैं। प्रारम्भ में ही पुल्टिस के बांधने से शोथ दूर हो जाता है। देर से बांधने से शोथ शीघ्र पक जाता है। अग्नि दग्ध व्रण, शोथ युक्त व्रण तथा ब्यूची (उकवत और छाजन) पर फलों का लेप किया जाता है।

कर्ण पूय—कान फूटकर पूय स्राव व वेदना होने पर फल के रस में थोड़ी अफीम घिसकर कान में डालते हैं।

यूनानी मतानुसार—दूसरे दर्जे में गरम, पहले दर्जे में खुश्क, दोषों को पतला करने वाला, सूजन को बिखेरने वाला, ज्ञानेन्द्रियों को बलदायक, शरीर की सर्दी दूर करने वाला है। इसके उपयोग की एक साधारण विधि यह है कि इसे रात्रि के समय गरम जल में भिगो दें। प्रातः छिलके व बीजों को दूर कर अखरोट या एरण्ड की गिरी के साथ पीसकर शहद में मिलाकर देते हैं। यदि सूखा ही उपयोग करना हो तो तिल के तैल में मिलाकर देवें। इससे कफ

और सौदा का उत्सर्ग, अवरोधों का निवारण तथा गृध्रसी भगंदर एवं सर्दी के रोगों में लाभ होता है। शीतल शोथ पर इसका लेप करने से वह बिखर जाती है। यह कफज शीत पित्त और उदर्द में भी लाभ करता है, दूषित पुराने फोड़ों एवं व्रणों को नरम करता है।

इसके साथ समभाग मोम, कुंदुर[1] और राल मिला कर कैरुती (मलहम) बनाकर लगाने से संधियों की जकड़न (संधियों का कड़ापन) एवं तज्जन्य वेदना दूर होती है।

इसके लेप से समस्त वातज एवं कफज शोथ पककर फूट जाते हैं। इससे मुँह की झांई दूर हो जाती हैं। सड़े गले नखों पर इसे हड़ताल और चीड़ के तैल (कतरान या जिफ्त) के साथ लगाने से वे उखड़ जाते हैं। फिर इसे चूना, अंगूर का रस व शहद के साथ लगाने से नख नवीन निकल आते हैं तथा उनमें शक्ति आती है।

सिर के गंज और फुंसियों पर इसे मेंहदी के साथ लगाते हैं। गुलरोगन में मिलाकर लगाने से यह बालों को बढ़ाता है।

इसे चूने के पानी में पकाकर या चूना में मिलाकर लगाने से प्लीहा शोथ दूर होता है; और अन्य अंगों पर लगाने से उनके भीतर के पतले व गाढ़े द्रवों को खींचकर उन्हें नष्ट कर देता है।

इसके अधिक खा लेने से भ्रम, अंग गौरव तथा उदर में मरोड़ व ऐंठन होने लगती है। ऐसा होने पर जल व शहद मिलाकर वमन करावें और बस्ति का प्रयोग करें। इसके उपरान्त सिकंजबीन पिलावें।

मात्रा–4½ माशा तक; कफज विकारों में 3½ मा0 तक।

यह हृदय के लिये हानिकर है। हानि निवारक, गांजवां खीरा, ककड़ी के बीज या बिल्लीलोटन है।–यू0 द्र0 वि0

विशिष्ट योग :

(1) अर्क (आसव या टिंचर) बांदा–इसके पके फलों को 8 गुनी शराब में मिला, बोतल में भर रखें। 7 दिन के पश्चात् छान लेवें। मात्रा 2 से 30 बूंद। हृद्रोग, जलोदर, गर्भाशय के विकार, प्लीहा, यकृत के विकार आदि में उपयोगी है। यह अर्क शक्तिवर्धक, अपस्मार आदि के आक्षेपों का निवारक, निद्राकारक तथा शीघ्र प्रसवकारक है। यह वामक तथा रेचक भी है।

(2) क्वाथ बांदा–इसके फलों में (1 भाग में 10 भाग) जल मिलाकर बनाया गया क्वाथ मात्रा 1¼ तोला से 5 तोला तक देने से भी उक्त विकारों में लाभ होता है।

–नाड़कर्णी

1. कुंदुर–यह 1 से 3 गज ऊँचे (कंटीले वृक्ष का गोंद है, जो कुछ कड़ुआ होता है। ये वृक्ष अरब, सोकोतरा, (Sacotra) व अफ्रीका आदि पश्चिमी देशों में पैदा होते हैं। लेटिन में (Boswellia floribunda) व अंग्रेजी में ओलिबेनम (IOlibannum) फ्रेन्किन्सेन्स (Frankincense) कहते हैं। इसके उक्त गोंद को ही हिन्दी में लुभान लोबान कहते हैं। यह भारत के गुग्गुल जाति का ही है। इसके अभाव में गुग्गुल या मस्तंगी ली जा सकती है।

बांदा नं० 4 (जुड़ा हुआ बांदा) (Viscum Articulatum)

स्वतंत्र खण्डों से जुड़कर बने हुए काण्डवाला (इसके सांधे को तोड़कर फिर दूसरे सांधे के साथ लगाने पर लग जाता है) अनेक शाखायुक्त, इस पत्र रहित पराश्रयी क्षुप का तना चिपटा, जुड़ी हुई संधियों वाला, कई संधियों पर इसके लटकते हुए गुच्छे 6 इंच से 3 फुट तक लम्बे पर्व ¼ से ½ इंच चौड़े 1 से 2 इंच लम्बे दोनों सिरों पर कुछ सकड़े, तना या काण्ड ताजी अवस्था में हलके हरे रंग का, शुष्क होने पर पीला भूरा होता है।

पुष्प–3–3 के गुच्छों में रस भरे, हरित वर्ण के अति सूक्ष्म, अति छोटे वृन्त युक्त पुष्प, संधि स्थान पर नर मादा पुष्प अलग–अलग; फल–लगभग ¼ इंच व्यास का, गोल, रस भरा पकने पर पीला होता है।

विहार की ओर इसके पुष्प दिसम्बर जनवरी तथा पंजाब की ओर जून से अक्टूबर तक आते हैं।

यह बांदा हिमालय, आसाम, खासिया, मध्य प्रदेश के दक्षिणी भाग, पश्चिमी घाट, पंजाब, बिहार व उत्तर–प्रदेश में अधिक पाया जाता है। यह प्रायः जामुन, रीठा, सीसम, धामन आदि वृक्षों पर विशेष पैदा होता है।

नाम :

सं0–बन्दाक, पुत्रिणी, कामिनी, नील बल्ली इ0। हि0–बांदा जुड़ा हुआ, पूडु, बुदू। म0 गु0 बं0–बांदा बोड़ो बादों। ले0–व्हिस्कम आर्टिक्युलेटम। व्हिस्कम ऐन्युलेटम (V. Angulatum)।

गुणधर्म व प्रयोग :

तिक्त, कटु, मधुर, शीत वीर्य, ग्राही, रसायन, कामोत्तेजक, वात कफ नाशक तथा रक्त विकार; यकृद्विकार, अपस्मार व व्रण में प्रयुक्त होता है।

संधिपीड़ा प्रधान ज्वर पर, पित्त विकारों पर भी इसका फाण्ट दिया जाता है तथा अन्य विकारों पर भी फाण्ट ही दिया जाता है। व्रणों पर इसका लेप करते हैं।

बांदा नं० 5 (चिमड़े पान वाला) (Viscum Orientale)

इस सघन शाखायुक्त पराश्रयी ग्रंथियुक्त क्षुप के काण्ड ग्रंथि स्थान में मोटे व चिपटे; पत्र अभिमुख अति चिमड़े कुछ लम्बे, अण्डाकार, ऊपर के भाग में सकड़े 1½-3 इंच लम्बे, अति सूक्ष्म वृन्त युक्त (लगभग वृन्त रहित) 3–5 सिराओं से युक्त होते हैं।

पुष्प–'गुच्छों में ½-¾ इंच लम्बे हरे या पीले रंग के नर मादा पुष्प मिश्रित; फल गोल या अण्डाकार कुछ चौड़े से ¼ इंच लम्बे हरे रंग के रस भरे होते हैं।

इसमें पुष्प प्रायः सदैव बारहों मास रहते हैं विशेषतः बसंतऋतु में अधिक आते हैं।

यह बंगाल, बिहार व मद्रास की ओर अधिक पाये जाते हैं।

नाम :

हि0–बांदा (चिमड़े पान वाला), कोल। ले0–व्हिस्कम औरिएन्टेल।

गुणधर्म व प्रयोग :

इसके गुण धर्म उसी पेड़ के गुण धर्मानुसार होते हैं जिस पर यह पैदा होता है। इसका प्रयोग अनेक भिन्न भिन्न रोगों पर किया जाता है।

बांदा नं० 6 (बांदा चिपकने वाला) (Viscum Angulatum)

इस पराश्रयी पत्ररहित चिपकने वाले क्षुप की लता सदृश शाखाएँ दो प्रशाखायुक्त नीचे की ओर लटकने वाली 2–3 फुट लम्बी अंगुली जैसी मोटी, पर्व युक्त, कुड़कीली पर्व ½ से 3 इंच लम्बे, पीताभ हरित वर्ण के, पर्व या संधि के स्थान की ग्रन्थि अधिक पीली होती है। इसके संधि स्थान से एक प्रकार का चिपकने वाला चिपचिपा रस टपकता है। यह गन्ध में उग्र तथा स्वाद में चरपरा सा मधुर होता है। पत्र–नहीं होते। पुष्प–अतिसूक्ष्म नर मादा पुष्प पृथक–पृथक; फल–बहुत छोटा, रसभरा, गोल हरिताभ पीत वर्ण का, 1 अतिसूक्ष्म बीजयुक्त होता है।

इसमें पुष्प प्रायः दिसम्बर जनवरी मास में आते हैं।

यह बांदा विशेषतः तेंदू, शीशम, रीठा, धामन, जामुन आदि वृक्षों पर, गुजरात, महाराष्ट्र, बिहार आदि प्रान्तों में पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग :

मधुर, चरपरा, शीतवीर्य, ग्राही व पित्त नाशक है। इसका प्रयोग महाराष्ट्र व गुजरात में विशेष किया जाता है। अतिसार तथा संग्रहणी में इसका फाण्ट या क्वाथ दिया जाता है।

नोट–बांदा नं0 7 (गुचले का मलंगा) (Viscum Monoicum)। इसका वर्णन ' "कुचने का मलंगा" के प्रकरण में भाग 2 में देखिये।

बांस (Bambusa Arundinacea)

गुडूच्यादि वर्ग एवं यवकुल (Graminae) के इस सीधे, समूहबद्ध, कंटकयुक्त 20–50 फुट ऊँचे गुल्म का कांड संयुक्त, गोल 6–7 इंच व्यास के मोटे, थोड़ी–थोड़ी दूर (लगभग 20 इंच की दूरी पर) अनेक पोले या ठोस पर्वयुक्त, काण्डाच्छादन–चर्मसदृश, भिन्न–भिन्न आकार के; शाखायें बहुत कम; पत्र–गुच्छों में 7 इंच लम्बे, भालाकार, अग्रभाग में नुकीले, निम्न भाग में प्रायः गोलाकार होते हैं।

पुष्प–लम्बे, अनेक शाखा–प्रशाखायुक्त दण्ड पर पुष्प श्वेत लाल वर्ण के एक लिंगी; फल–$\frac{1}{3}$ इंच लम्बगोल, देखने में यव जैसे होने से ये 'वंशयव' कहे जाते हैं।

बांस भारत में प्रायः सर्वत्र मध्य भारत, दक्षिण भारत, बंगाल, उत्तर पश्चिम भारत में पैदा होता है। आसाम तथा ब्रह्मदेश में अधिक होता है तथा जावा, सुमात्रा आदि द्वीपों में भी प्रचुरता से होता है। इन देशों में बांस की बिना कांटे वाली तथा अन्यान्य कई जातियां पैदा होती हैं। जंगलों में तो यह स्वयं पैदा होता है, किन्तु कई स्थानों के शहरों में यह बोया भी जाता है, इसके हरे काण्ड के टुकड़ों को पर्व सहित रोपण करने से समय पाकर उनमें से कई बांस पैदा हो जाते हैं।

नोट नं0 1–बांस प्रायः स्वयं भी 20 या 30 वर्षों की आयु में फूलता व फलता है। यह जब पुष्पित होता है, तब देखने में सुन्दर प्रतीत होता है, किन्तु इसका पुष्पित होना देश, जाति तथा उसके अधिकारी के लिये अशुभ सूचक माना जाता है। यह प्रायः ग्रीष्म ऋतु में फूलता व फलता है। वर्षा ऋतु में बादलों की तेज गर्जना से बांस के पर्वो में दरारें पड़ जाती हैं। मादा बांस पोला होता है तथा नर बांस ठोस होता है।

नोट नं0 2–बांस की कई जातियां ऐसी हैं जिनमें पुष्प उनके जीवन काल में एक ही बार आते हैं तथा फिर ये थोड़े ही समय में समूल नष्ट हो जाते हैं। कुछ जातियों में पुष्प

प्रति 3 वर्ष में आया करते हैं तथा बहुत थोड़ी जाति के बांस ऐसे भी हैं, जिनमें प्रतिवर्ष आते रहते हैं।

आगे वेल्थ आफ इण्डिया (Wealth of India) ग्रन्थके लेखक लिखते हैं, कि बांस की जातियाँ (Species) 550 हैं। इनमें 136 जाति भारत में, 39 ब्रह्मदेश में, 29 अंडमान में, 9 जापान में, 30 फिलिपाइन में तथा शेष में कुछ न्यूगिनी में, कुछ दक्षिण अफ्रीका और कुछ क्विन्स लेण्ड में पैदा होती हैं। ठोस बांस में एक जाति Dendrocalamus (बेंत के सदृश) नाम की है। (इसका वर्णन नीचे के नोट नं0 3 में देखिये)। विशेषतः बांस सीधे ही बढ़ते हैं, किन्तु कोई कोई जाति के बांस लता के समान दूसरे वृक्ष पर चढ़ जाते हैं। कुछ जातियां क्षुप में छोटी एवं काष्ठरहित कोमल होती हैं। पहाड़ों पर एक प्रकार के पतले तथा लम्बे पर्व वाले ऐसे भी छिद्र युक्त बांस होते हैं जिनसे बंशी बनाई जाती है। इसे कीचक वेणु (कीचक बांस कहते हैं।

बांस (Bambusa Arundinacea Willd.)

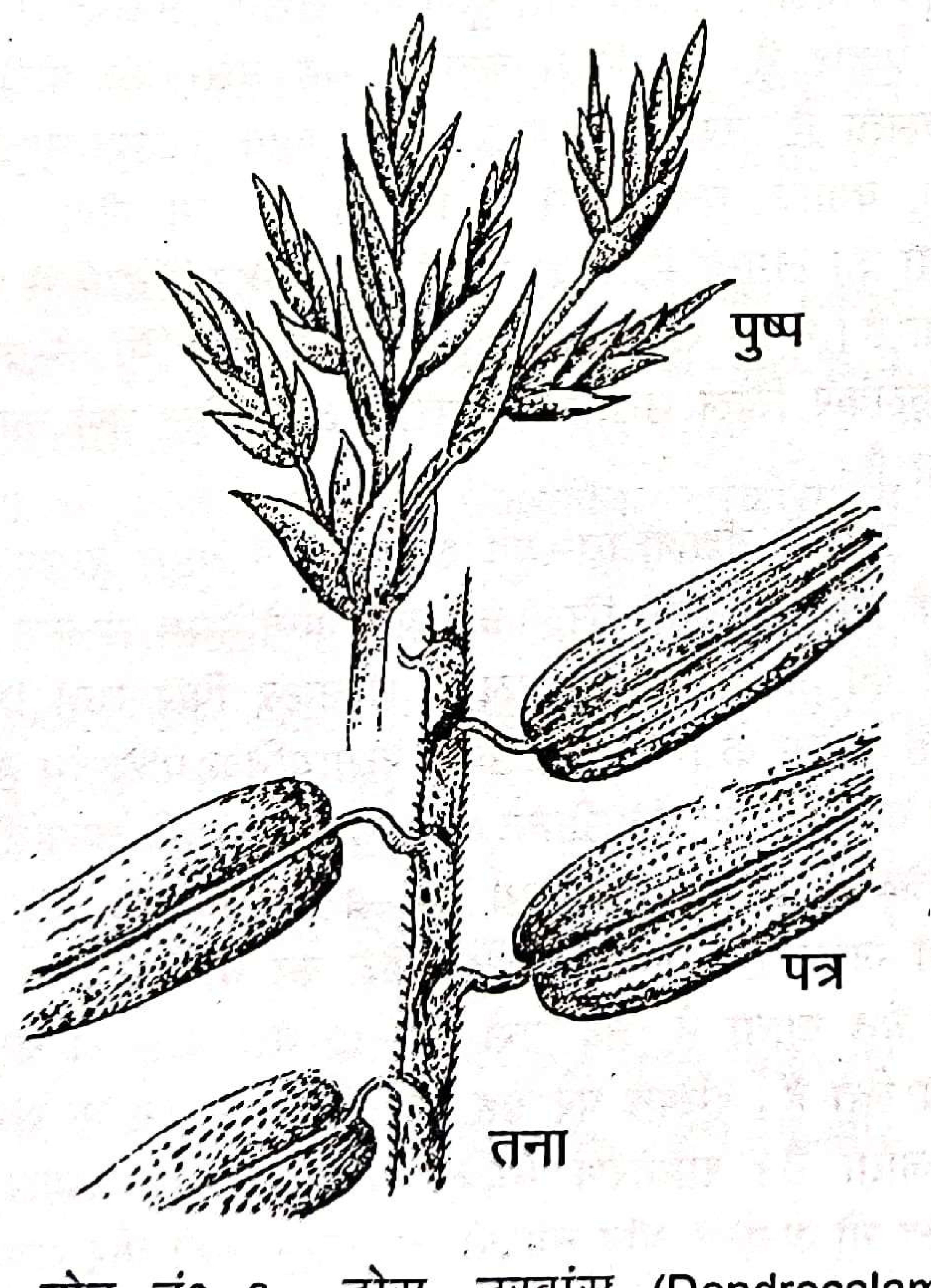

नोट नं0 3– ठोस, नरबांस (Dendrocalamus Strictus)– इस नर जाति के बांस के बेंत सदृश, अति सीधे, सकड़े, देखने में अति सुन्दर, पतनशील, सघन, गुच्छमय, दृढ़ कांडयुक्त गुल्म के काण्ड 2½ से 6 फुट ऊँचे, गोल, 1 से 3 इंच व्यास के, ठोस या छोटे बिल युक्त होते हैं (इसकी ही एक जाति के कांड की ऊँचाई 20 से 120 फुट तक होती हैं। Dendrocalamus Giganteus इसका लेटिन नाम है) के कांड नीले हरे रंग के पुराने हो जाने पर हल्के हरे या पीले रंग के हो जाते हैं। पत्र–1–2 इंच लम्बे (शुष्क देश में) आर्द्र देश में 10 इंच तक लम्बे, ¼ से 1¼ इंच तक चौड़े, कई संयुक्त शिरायुक्त। पुष्प–लम्बी शाखा प्रशाखा युक्त मिश्र मंजरी में सघन पुष्प मंजरी 1 इंच व्यास की कुछ पीत वर्ण की होती है। फल–$\frac{1}{3}$ इंच लम्बे अण्डाकार, भूरे रंग के चमकीले होते हैं। पुष्प व फल ग्रीष्म ऋतु में आते हैं। इस बांस की लाठियां बहुत अच्छी बनती हैं।

इस बांस के गुल्म बिहार, छोटा नागपुर तथा उड़ीसा में अधिक पाये जाते हैं।

नाम :

हि0–नर बांस, कठबांसी, बांस कबान इं0। म0–नगोठ बेलू। बं0–काराइल बांस। अं0–मेल बाम्बू (Male bamboo)। ले0–डेन्ड्रोकेलेमस स्ट्रिक्टस।

गुणधर्म व प्रयोग :

प्रस्तुत प्रसंग के बांस के जैसे ही हैं। इसके पर्व की ग्रन्थि के समीप का भीतरी कोमल भाग स्निग्धकर तथा ज्वरनाशक है। इसके पत्र विशेष संकोचक हैं। गर्भाशय संकोचनार्थ पत्रों का विशेष प्रयोग किया जाता है।

नोट नं0 4–वंशलोचन–मादा जाति के जो मोटे पीले एवं पहाड़ी बांस होते हैं, जिन्हें नजला बांस कहते हैं, उनके भीतर का जो श्वेत रस सूखकर कंकर जैसा हो जाता है, उसे ही वंशलोचन कहते हैं। बांसों का जंगल जब काटा जाता है, जिस बांस की पोरी में यह होता है उस बांस के उठाने धरते समय इसके रवे भीतर खड़कने से पता चल जाता है कि इस बांस की पोरी में बंशलोचन है, उसे चीर कर निकाल लेते हैं। यह असली बंशलोचन बहुत प्राचीन काल में भारत के ही बांसों में प्राप्त किया जाता था। कहा जाता है कि स्वाति नक्षत्र की जल की बूंदें जिस मादा जाति के बांस के भीतर प्रविष्ट हो जाती हैं, उसमें वंशलोचन निर्माण हो जाता है। अभी भी भारत के उत्तर पूर्व के तथा दक्षिण भारत के पहाड़ी अरण्यप्रदेशों में, इस प्रकार के वंशलोचनोत्पादक निम्न जातियां पाई जाती हैं–(1) प्रस्तुत प्रसंग का (Bambusa Arundinacea, Retz (Dym.) (2) Arundo Bambos Linn. (Roxb.) (3) Bambusa Bambas Druce (Chopra)। ये तीन जातियाँ दक्षिण भारत में प्रचुर एवं आसाम व बंगाल में साधारण सहजोद्भव हैं, किन्तु गंगा के मैदान से लेकर सिंधु तक सहजोद्भव नहीं हैं। बंगाल की ओर इसी की एक जाति विशेष Bambusa beceifera (Roxb.) है जिसमें कांटे नहीं होते।

उक्त 3–4 बांस की जातियां ही आजकल फल एवं वंशलोचनोत्पादक पायी जाती हैं। इससे प्रतीत होता है, कि चरक एवं सुश्रुत के समय में जबकि भारत में विशेषतः

विन्ध्यांचल के दक्षिण भाग में अरण्य की विपुलता थी, दक्षिण का भाग अरण्यमय ही था, तब इस बांस की ये जातियां भी प्रचुर परिमाण में पैदा होती होंगी। इसी से तो चरक संहिता (अगद तंत्र में–गंध हस्ति महागंधहस्ति आदि अगदों में एवं अन्य क्षय, कासादि प्रयोगों में भी) सुश्रुत संहिता के अगद तंत्र में वंशत्वगादि में वंशलोचन, वंशत्वग, इन नामों से इसका उल्लेख किया है। हमारे कथन का यह प्रयोजन नहीं है कि उस समय भारत में बाहर के सिंगापुर, जावा, सुमात्रादि पूर्व द्वीप समूहों से इसका आयात नहीं होता था। अवश्य होता होगा, क्योंकि उस समय का भारत आधुनिक भारत जैसा संकुचित नहीं था। पता चलता है कि ईस्वी सन् की 12 वीं सदी तक बम्बई प्रान्त के ठाणा नामक बन्दरगाह में इसका अत्यधिक आयात होता था तथा वहीं से यह अदन आदि विदेशी बंदरगाहों को भेजा जाता था।

बांस (Dendrocalamus Strictus Nees.)

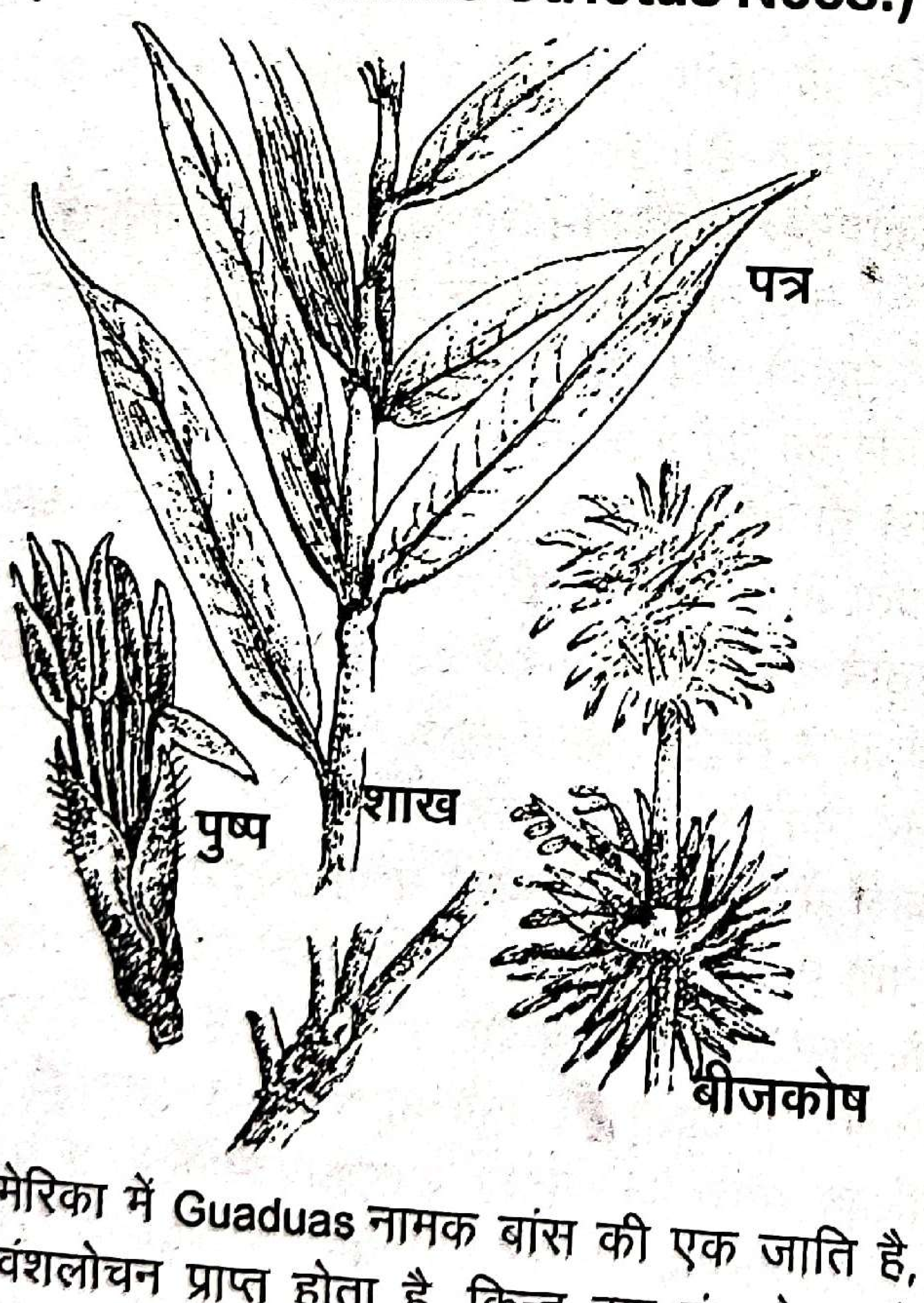

अमेरिका में Guaduas नामक बांस की एक जाति है, जिससे वंशलोचन प्राप्त होता है, किन्तु इस वंशलोचन में भारतीय वंशलोचन की अपेक्षा कम प्रमाण में सेलिसिलिक एसिड होता है।

उक्त असली वंशलोचन के स्वरूप के विषय में राज निघंटुकार ने लिखा है कि यह–शुक्रा, श्वेता, पिंगा (अर्थात् स्निग्ध अपारदर्शक, चमकीला श्वेत), रोचनिका (गोरोचन जैसी पीली छटावाला) होता है। यह इसके रंग की हुलिया पोलकी नामक रत्न (एक कीमती दूधिया पत्थर Opal) से मिलती जुलती सी है। बाजारू वंशलोचन के स्निग्धश्वेत (शुक्ला) वर्ण में नीली छटा की विशेषता होती है, किन्तु रोचना पिंगा छटा उसमें नहीं दीखती, जिसका दीखना आवश्यक है। प्रतीत होता है कि असली वंशलोचन पर दाह संस्कार के कारण यह उसकी आवश्यक छटा बाजारू वंशलोचन में लुप्त हो जाती है। मालूम होता है कि राज निघण्टुकार के समय में यह परमोपयुक्त द्रव्य बिना अग्निसंस्कार के मूल स्वरूप में ही प्राप्त होता एवं उपयोग में लाया जाता था।

बांस के कुल का यह एक नैसर्गिक गुण है कि रूक्ष ग्रीष्मकाल में परस्पर की रगड़ से इसके समूहबद्ध वृक्षों में आग लगकर वे जल जाते हैं। इस प्रकार से जले हुए बांसों में आग से झुलसे या दग्ध हुए वंशलोचन के कंकड़ प्राप्त होते हैं। उन पर एक विशिष्ट प्रकार की उष्णता देकर वे स्वच्छ किये जाते हैं तथा इस प्रकार की उष्णता से संस्कारित वंशलोचन बाजारों में विक्रयार्थ आता है। सारांश यह कि स्वाभाविक मूल स्वरूप के वंशलोचन की प्राप्ति कठिन है।

वंशलोचन पर हुए अनुसंधानों का जो महत्वपूर्ण विवरण आयुर्वेद विज्ञान में प्रकाशित हुआ था, उसका संक्षिप्त सारांश इस प्रकार है, कि जिस रूप में यह बांस की पोरी से निकलता है, उसी रूप में इसका आजकल उपयोग नहीं होता, क्योंकि यह देखने में मिट्टी का रंग जैसा बहुत भद्दा सा लगता है, अतः यह विद्युत की भट्टियों में भूना जाता है। भूनते समय यह चटखता एवं तीव्राग्नि के प्रभाव से फूलकर खिल उठता एवं उत्तम श्वेत नील वर्ण का हो जाता है।

नकली वंशलोचन–यह अमृतसर में बहुत बनता है। इसके लिये सोडियम सिलीकेट और अमोनियम सल्फेट इन दोनों को अलग–अलग जल में घोलकर फिर उन्हें मिला देते हैं। दोनों के मिश्रण से उसमें रासायनिक परिवर्तन होता तथा जल में घुला सिलीकेट धीरे–धीरे नीचे की तलहटी में एकत्रित होता है। यह कार्य बड़े–बड़े सीमेंट के हौजों में कियां जाता है। जब वह सिलीकेट का यौगिक जम कर नीचे बैठ जाता है, तब उसे 10–12 बार जल से धोकर सुखा लेते हैं। सूखने पर यह असली वंशलोचन के समान हो जाता है। साधारण व्यक्ति क्या बड़े–बड़े समझदार व्यक्ति भी असली और नकली का अन्तर नहीं कर सकते।

असली और नकली की सहज–सरल परीक्षा इस प्रकार की जा सकती है कि वंशलोचन को आग में डाल देने से यदि उसमें विकृति आ जाय, उसकी आभा प्रभा नष्ट हो जाय तो उसे नकली जानना चाहिये। यदि वह जैसा का तैसा ही बना रहे, उसमें कोई विकृति न आये तो उसे असली जाने। नकली को लकड़ी या पत्थर पर घिसने से उस पर रेखा उभर आती है या निशान पड़ जाते हैं। हाथ

की चुटकी में लेकर जोर देने से टूटता है, तथा मुख में रखने से गल जाता है। इसमें पानी को सोखने की शक्ति नहीं है। असली पानी को सोखता है और पारदर्शक हो जाता है। नकली पानी में घुल जाता है।

नाम :

सं0–वंश, वेणु, त्वक्सार (दृढ़त्वचा वाला), तृणध्वज (तृण जाति में श्रेष्ठ या ऊँचा), शतपर्वा (अनेक पर्वों वाला), यव फल इं0। हि0–बांस, नल, मगर। म0बांबू, कड़क, वेणु, माणगा, चिवा इं0। गु0–बांस, बेड़ो बांसा, तीनकोर। बं0–बांश। अं0–बाम्बू (Bamboo) ले0–बम्बुसा अरुण्डिनेसिया, बांबूसा स्पिनोसा (Bamboosa Spinosa), बांबूसा ओरिएण्टाल्स (B. Orientalls) इं0।

रासायनिक संगठन :

पोले बांस में–राख 3.3%, सिलिका 1.8%, उष्णजल में द्रवणीय द्रव्य 6%, गोंद प्रधानद्रव्य 19.6%, केन्द्र प्रधान काष्ठौज युक्त द्रव्य 30.1% और काष्ठौज (Cellulose) 57.6% होता है।

ठोस बांस में राख 2.1%, सिलिका 1.8%, पेण्टोसन (कार्बोहाइड्रेट) 19.6%, लिग्निन 32.2% और काष्ठौज 60.8% होते हैं।

पर्व संधि में–जलीय सत्व 9.8%, वसा व सिक्थ 1.4%, अपक्व द्रव्य 25%, लिग्निन 17.6%, काष्ठौज 46.1% व राख 4.5% होती है।

बांस के अंकुरों में–सायनोजेनेटिक ग्लुकोसाईड (Cyanogenetic Glucoside) जो पचन होने पर विषाक्त वायु उत्पन्न करता है या पाचन काल में .03% हायड्रोसायनिक एसिड (Hydrocyanic Acid) व 23% लोहबानाम्ल उत्पन्न करता है। अंकुर के रस की परीक्षा करने पर लगभग 0.30% हायड्रोसायनिक एसिड और मुक्त लोहबानाम्ल (Benzoic Acid) 16% प्राप्त हुआ है, ऐसा घोष और चोपरा ने लिखा है।

बांस के फल या चावल में–जल 11%, श्वेतसार 73%, पोषक द्रव्य 11.8%, तैल द्रव्य 0.6%, रेसे 1.7% और राख 1.2% प्राप्त होती है।

बांस की जलाई हुई राख में–सिलिका 28%, चूना 4%, मग्नेसिया 6%, पोटाशियम 34%, सोडियम 12%, क्लोरिन 2% गंधक 10% रहता है। कुछ लोग इसके क्षार को तथा असली वंशलोचन को गरमकर पानी में डालते हैं; और सूखने पर वंशलोचन के स्थान पर बेचते हैं।

वंशलोचन में–सिलिका (Silica) 90%, लोहे का पेरोक्साइड या मंडूर (Peroxide of Iron) 30% पोटाश (Potash), चूना, अल्युमोनिया (Aluminia) तथा कुछ वानस्पतिक पदार्थ जैसे कोलिन (Cholin), बिटेन (Betain), न्यूक्लिएस (Nuclease), यूरिएस (Urease) प्रभूजिन एवं कार्बोज के पाचन किण्व तथा स्नेह विलेयक किण्व (Proteolytic. diastatic and emulsifying enzymes) तथा कुछ सायनोजेनेटिक ग्लुकोसाइड (Cyanogenetic glucoside) आदि पदार्थ पाये जाते हैं।

प्रयोज्यांग–पत्र, अंकुर, बीज, मूल, गांठ (पर्व), छाल, पुष्प, राख व वंशलोचन।

गुणधर्म व प्रयोग :

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, मधुर, कषाय, शीत वीर्य, मधुर विपाक, सारक, बस्तिशोधक, छेदन, कफहर तथा पित्त, दाह, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अर्श, रक्त विकार, कुष्ठ, व्रण, शोथ आदि पर प्रयुक्त होता है।

यूनानी मत से–शीत व रूक्ष जला हुआ बांस उष्ण व रूक्ष होता है। बांस–लेखन व मूत्रार्त्तवजनन है। इसकी जड़ और छाल को जलाकर सिरके में मिला गंज के स्थान पर लगाने से बाल फिर जमने लग जाते हैं। इससे दद्रु (दाद) में भी लाभ होता है। इसे जलाकर दांतों पर मलने से दांत साफ होते हैं। इसकी राख को मंजनों में मिलाकर दांतों पर मलते हैं। बांस को सिरके के साथ पीसकर कमर व कूल्हों पर लगाने से शूल दूर होता है। बांस को पानी में जोश देकर पीने से रुका हुआ मासिकधर्म व पेशाब जारी हो जाता है। इसके हरे पत्तों को पानी में खूब मलछानकर पीने से मुंह से खून का आना बन्द हो जाता है। पत्तों को जलाकर सूखी तथा तर खुजली पर लेप करने से लाभ होता है। पत्तों का अर्क शहद के साथ पीने से खांसी में लाभ होता है। बांस और उसके पत्तों पर जो एक प्रकार की चिकनाहट जम जाती है। उसको आंख में लगाने से जाला कट जाता है। प्रसूति के बाद प्रसूता के गर्भाशय में जो गन्दगी शेष रह जाती है, वह इसके पत्रों का क्वाथ पीने से बिल्कुल साफ हो जाती है।

पीला बांस–अग्नि दीपक, अजीर्ण नाशक, रोचक, पाचक, हृद् शूल, गुल्म आदि नाशक है।

पत्र–आर्त्तवजनन, गर्भाशय संकोचक, कास, कटिवेदना, अर्श, पित्त प्रकोप, सुजाक व ज्वर शामक हैं। नेत्रों को धोने में उपयोगी हैं, कोमल पत्तों का प्रयोग कफ में खून जाना, कुष्ठ, ज्वर तथा बालकों के सूत्र कृमि आदि के निवारणार्थ किया जाता है। रजोरोध, कष्टार्त्तव तथा प्रसवोत्तर गर्भाशय शोधनार्थ कोमल पत्रों का क्वाथ दिया जाता है। गाय भैंस आदि पशुओं को प्रसूति के बाद इसके पत्रों को खिलाने से उनके गर्भाशय की गन्दगी साफ होकर गर्भाशय अपनी असली हालत पर आ जाता है।

(1) प्रसूति के बाद गर्भाशय की शुद्धि (जेर या झिल्ली निकालने) के लिये—इसकी 10 पत्तियों को 20 तोला जल में पकावें। 5 तोला जल शेष रहने पर छानकर उसमें 1 तोला गुड़ मिलाकर गरम—गरम (सुहाता हुआ) पिला देने से जेर, झिल्ली निकल कर पीड़ा भी दूर हो जाती है।

—भा0 गृ0 चि0

(2) सद्यःप्रसवार्थ एवं मूढ़ गर्भ निष्कासनार्थ—प्रसवावस्था के समय, जब गर्भाशय का मुख खुलजावे (अर्थात्! जब उसमें से गन्दा बदबूदार पानी निकलने लगे तथा दूरी में पी0 बी0 करने से दो अंगुल छिद्र Two finger hole होकर भीतर के जीवित या मृत बच्चे का सिर दिखलाई देवे) तब निर्धूम कोयलों की आग पर फुलाए हुए सुहागा के चूर्ण 4 माशा को बांस के पत्र के क्वाथ 10 तोला में मिलाकर पिला देने से शीघ्र ही प्रसव हो जाता है। यदि एक बार के पिलाने से कुछ भी असर न हो तो आध घण्टे बाद दूसरी खुराक पिलावें। यह 2—3 खुराक तक दिया जा सकता है। अवश्य लाभ होता है।

—वैद्य श्री जी0 बी0 पन्त शास्त्री आयुर्वेदाचार्य

(3) प्रमेह, सुजाक, बहुमूत्र तथा अर्श पर—शीत प्रमेह (यह कफज प्रमेह का एक भेद है) हो तो इसके पत्तों को छायाशुष्क कर ½ तोला और अनन्तमूल की जड़ 1 तोला दोनों को जौकुट कर 27 तोला जल में अष्टमांश क्वाथ कर (क्वाथ के पकते समय उसमें 1 तोला मिश्री मिला देवें) छानकर पिलावें। इस प्रकार प्रातः सायं पिलाने से लाभ होता है। —ब0 गु0

पुराने जीर्ण सुजाक पर—उक्त पत्तों को व अनन्तमूल को समभाग 6—6 माशा लेकर क्वाथ करें। चतुर्थांश शेष रहने पर उसमें 3—4 माशा शक्कर (या मिश्री) मिला सेवन करावें। इस प्रकार 7 या 14 दिन या अधिक समय तक पिलाने से लीन विष जलकर सुजाक दूर हो जाता है।

—गां0 औ0 र0

बहुमूत्र पर—पत्तों का फाण्ट दिन में जल के स्थान पर पिलाते रहने से आमाशय व मूत्र संस्थान में आई हुई उग्रता तथा दाह, तृषा शमन होकर यह रोग दूर हो जाता है।

बहुमूत्र पर—2½ तोला पत्तों को 20 तोले जल में पकावें। चतुर्थांश से कुछ कम (4 तोला तक) शेष रहने पर छानकर उसमें ½ तोला शहद मिलाकर पिलाने से भी अवश्य लाभ होता है। —संकलित

अर्श पर—पत्तों के क्वाथ में अर्श रोगी को बैठाने से अर्श की वेदना शान्त होती है। —गां0 औ0 र0

(4) पारे के विष पर—दूषित या अशुद्ध पारद से निर्मित रस कपूर आदि के सेवन से जो पारे का दुष्परिणाम (मुख, आमाशय में दाह, उदरशूल, अतिसार, लालाप्रसेक, रक्तपित्त, रक्तमेह, मूत्राघात, प्रलाप, संन्यास एवं अन्त में मृत्यु होना) होता है उसके निवारणार्थ इसके पत्तों के रस में शक्कर मिलाकर पिलाते हैं।

नोट—इसके कोमल पत्तों का या अंकुरों का जो अचार, कढ़ी या साग बनाई जाती है वह अजीर्णजन्य क्षुधा तथा पचन क्रिया की वृद्धि एवं सुधार करती है। —नाड़कर्णी

किन्तु ध्यान रहे पत्रांकुरों को अच्छी तरह उबाल कर ही अचार, साग या कढ़ी बनाई जाती है, अन्यथा वह विषाक्त हो जाती है। इसका अचार लवणयुक्त जल में इसे कतर कर डालकर कांजी या सिरके के रूप में बनाया जाता है। इस सिरके का उपयोग मांस मछली के साथ उपयोगी होता है। क्षुधा बढ़ती व पाचन भी ठीक होता है।

अंकुर—लघु (अन्य मत से गुरु), रूक्ष, कटु (चरपरा), अम्ल, कसैला, सारक, कटु विपाक, उष्ण वीर्य, (अन्य मत से शीत वीर्य), दीपन, पाचन, कफहर, विदाही, वातपित्त प्रकोपक, (कफवात प्रकोपक सुश्रुत), कृमिघ्न, शोथहर है।

अग्निमांद्य, अजीर्ण तथा कृमिरोग पर अंकुर का अन्य सुगन्धित द्रव्यों के साथ क्वाथ बनाकर सेवन कराते हैं।

(5) व्रणशोथ, व्रण एवं कृमियुक्त दुष्ट व्रण तथा नारू पर—व्रण शोथ तथा साधारण व्रण पर अंकुरों को पीसकर लेप करते हैं।

कृमियुक्त दुष्टव्रणों पर प्रथम इन अंकुरों के रस को टपकाकर फिर उनका पुल्टिस बनाकर बांध देने से कीड़े नष्ट होकर व्रण ठीक हो जाता है। —नाड़कर्णी

नोट—इसके कोमल अंकुर (जिसका अचार डाला जाता है ऊपर नं0 4 के नोट में देखिए) का स्वरस हायड्रोसायनिक एसिड तथा पोटासियम साइनेट जैसे विषैले द्रव्यों से भी अधिक विषाक्त एवं कृमिनाशक है। अतः नारू तथा अन्य कृमि रोगों पर इसका प्रयोग बहुत सफल हो सकता है। नारू पर कोमल अंकुरों की पुल्टिस बनाकर बांधने से नारू नष्ट हो जाता है। —ब0 चं0

बीज (चावल)—बांस के चांवल कसैले, मधुर, कटु, विपाक, उष्ण वीर्य, सारक (किन्तु उष्णवीर्य होने से मूत्र सारक, कोई इसे मूत्र शोधक मानते हैं) रूक्ष, बल्य, वातपित्त कारक, कफहर, पित्तवर्धक, लेखन, विषघ्न हैं।

मेदोरोग, मूत्र विकार, प्रमेह तथा विषों में इन चावलों को भात की तरह पकाकर खिलाते हैं। सुश्रुत ने इन की आहार वर्ग में गणना की है। महाकुष्ठ पर इसका प्रयोग किया है।

मूल—कफ पित्त नाशक, वर्ण्य, रक्तशोधक, मूत्रल कुष्ठघ्न, विषघ्न, लेखन, मूत्रार्त्तव प्रवर्त्तक तथा मूत्रविकार

नाशक है।

विस्फोटक व्याधियों (चेचक आदि erruptive infections) में बहुत उपयोगी है। दाद पर भी लाभदायक है। कुष्ठादि रक्तविकारों में इसका लेप किया जाता है। कफ पित्त के विकार, मूत्रकृच्छ्र, रजोरोध, रसविकारों में इसका क्वाथ दिया जाता है।

(6) चेचक के दागों पर तथा मुख सौन्दर्य वर्धनार्थ इसको ही पीसकर या अन्य औषधि के साथ पीसकर लेप करते हैं।

दाद पर इसे जलाकर लगाते हैं।

(7) खालित्य या गंज पर–इसकी जलाई हुई जड़ तथा छाल की राख में सम भाग हल्दी का चूर्ण मिला थोड़े जल के साथ पीसकर सिर पर लगाने से बालों की जड़ें मजबूत होती हैं। गिरे हुये बालों के स्थान में नये बाल पुनः जम जाते हैं। –यूनानी

(8) आमाशय एवं यकृत की उष्णता शांति के लिए जड़ को जलाकर उसकी राख को जल में घोलकर थोड़ी देर रख कर उसका निथरा हुआ जल पिलाने से उष्णता की शांति होती है। मूत्र खुलकर आता है। –यूनानी

(9) सिर की गंज तथा दाद पर–जड़ की राख को चमेली के तेल में मिलाकर लगाने से लाभ होता है। –यूनानी

(10) कुत्ते के विष पर–कुत्ते के काटने पर इसकी जड़ को दूध में पीस कर पिलाने से उत्तान (उभरा हुआ) विष जल जाता तथा लीन विष पचन हो जाता है। अथवा–

इसकी जड़ और अंकोल को गोदुग्ध में घिसकर प्रतिदिन प्रातः 15 दिन पिलाने से लीन विष जल जाता है और उत्तान विष वमन द्वारा निकल जाता है। –गां0 औ0 र0

गांठ (पर्व या पोरुवे)–गर्भ विकार, आर्त्तव विकार, कास, संधि पीड़ा आदि नाशक है।

(11) शुष्क गर्भपातनार्थ (गर्भाशय में छोड़ जम गया हो या शुष्क गर्भ चिपक गया हो तो) इसकी गांठ को जौकुट कर 1 सेर जल में चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर छानकर उसमें कच्ची फिटकरी 1 मा0 व गुड़ 2 तोला मिलाकर प्रतिदिन प्रातः 3 से 10 दिन तक पिलाते रहने से शुष्क गर्भ छोड़ आदि निकल जाता है। यह इस कार्यार्थ एक निर्भय उपाय है। सब प्रकार की प्रवृत्ति वाली स्त्रियों को यह अनुकूल है। किसी को हानि नहीं होती। छोड़ के गिर जाने पर इसे बन्द कर देवें।

यह प्रयोग काठियावाड़ में अनेक वर्षों से घरेलू उपचार के रूप में प्रसिद्ध है। इससे पूर्ण रूप से सफलता मिलती है। ध्यान रहे आवश्यकतानुसार गर्भाशय पर तैल की मालिश कर रोज थोड़ा सेक करते रहें। भोजन में स्त्री को गेंहू के आटे को तैल या घृत में भूनकर, गुड़ की चाशनी में मिला हलुआ बनाकर खिलायें। ऐसा करने से कार्य सत्वर हो जाता है। गर्भाशय में विकार शेष नहीं रहने पाता एवं गर्भाशय आकुंचित हो जाता है।

छोड़ या गर्भ के निकल जाने पर सोया और सौंठ 6 मा0 से 1 तो0 तक का प्रतिदिन क्वाथ कर उसमें गुड़ 2 तो0 मिलाकर 7 दिन तक पिलाते रहने से गर्भाशय में चिपका हुआ दूषित द्रव्य निकल कर जो विष लीन रूप से रहा हो वह जल जाता है तथा गर्भाशय शुद्ध एवं सबल हो जाता है। –रसतंत्र सार

(12) गर्भाशय में आंवल (जेर) रुक जाना तथा मक्कल शूल के होने पर–2 तोला इसकी गांठों का क्वाथ बनाकर छान कर उसमें 2 तोला गुड़ मिलाकर पिलाया जाता है। आवश्यकतानुसार पुनः 2–3 घंटे बाद दूसरी बार पिलाते हैं। –गां0 औ0 र0

(13) कष्टार्त्तव या नष्टार्त्तव पर–इसकी गांठ का मोटा चूर्ण 2 तोला और 4 तोले सोया बीज दोनों को एकत्र 96 तोला जल में पकावें। अष्टमांश शेष रहने पर छानकर उसमें 2½ तोला गुड़ मिलाकर सेवन करायें।–आगे विशिष्ट योग में देखिये।

पथ्य रूप में स्त्री को काला तिल, उड़द की दाल का बरा, मठा, दही, कांजी नित्य सेवन करायें। जिस को मासिक साधारणतया कम होता हो, शूलयुक्त हो, उसे कालातिल कल्हार कर, दूना गुड़ मिला 2–2 तोले के लड्डू बना दिन में 4 बार खाना चाहिये। –चिकित्सा

(14) कास तथा सन्धि पीड़ा पर–कास, विशेषतः बालकों की सूखी खांसी पर इसकी गांठ को जल में घिसकर उसका चन्दन सा निकाल कर थोड़ा गरम कर, थोड़ा–थोड़ा पिलाने से खांसी दूर हो जाती है।

संधि पीड़ा के स्थान पर गांठों को पीसकर, थोड़ा गरम कर पुल्टिस जैसा बांधते हैं।

छाल–

(15) त्वचा व रक्त की दाह पर तथा चोट जन्य पीड़ा पर–बांस की छाल का क्वाथ कर ठंडा हो जाने पर उसमें शहद मिला, दिन में दो बार, 3 दिन तक पिलावें। इससे शराब जन्य दाह एवं विष प्रकोपजदाह में भी लाभ होता है। –गां0 औ0 र0

चोट लग जाने पर शरीर में कहीं दर्द हो, तो इसकी छाल को खूब महीन कर शक्कर के साथ लेने से लाभ होता है। –यूनानी

(16) कर्णशूल पर (कफज कर्णशूल में)–इसकी छाल

का कल्क 10 तो0 और बकरी का व भेड़ का मूत्र 4 सेर तथा सरसों का तेल 1 सेर इन्हें एकत्र पकाकर, तेल मात्र शेष रहने पर छानकर रख लेवें। इसे थोड़ा थोड़ा कान में डालने से लाभ होता है। —वा0 भ0 उ0 तंत्र अ0 18

(17) कोष्ठ स्थित दूषित रक्त के स्रावार्थ—इसकी छाल, अरण्डमूल, गोखरू और पाषाण भेद के क्वाथ में हींग व सेंधानमक मिलाकर सेवन कराने से कोष्ठ स्थित रक्त निकल जाता है। —यो0 र0

(18) मसूरिकान्तक धूप—इसकी छाल के साथ तुलसी, लाख, कपास के बीज (बिनौला) मसूर, जौ का आटा, अतीस, (कुछ वैद्य अतीस नहीं लेते), बच, ब्राह्मी और हुलहुल इनमें से जितनी चीजें प्राप्त हों, उन्हें समभाग लेकर कूटकर उसमें घृत मिलाकर मसूरिका (चेचक) के प्रारम्भ में इसकी धूप (धूनी) देने से मसूरिका शीघ्र ही नष्ट हो जाती है।

—बं0 से0

राख—

(19) मूत्रावरोध तथा जख्म से रक्तस्राव होने पर—बांस की राख (1—2 मा0) में समभाग शक्कर या मिश्री मिलाकर चावल के धोवन के साथ पिलाने से मूत्र शुद्धि होती है।

जख्म से रक्तस्राव होता हो तो बांस के कोयलों को पीसकर जख्म पर बुरकने से बहता हुआ खून बन्द हो कर जखम भर जाता है। इससे सूजन भी बिखर जाती है।

—यूनानी

पुष्प—

(20) कर्णशूल या बाधिर्य पर—बांस के फूलों के रस की बूंदें टपकाते रहने से लाभ होता है।

वंशलोचन :

कषाय, मधुर, शीतवीर्य, मधुर विपाक, वातपित्तशामक, बृंहण, तृष्णानिग्रहण, ग्राही, मूत्रल, हृद्य, रक्तस्तंभन एवं शोधक, कफनिःसारक श्वासहर, बल्य, कामोद्दीपक, उत्तेजक, उद्वेष्टन निरोधी तथा कास, श्वास, यक्ष्मा, तृषा, वमन, अतिसार, मन्दाग्नि, हृद्रोग, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र, कुष्ठ, कामला, क्षयज्वर, सामान्य दौर्बल्य आदि पर प्रयुक्त होता है।

वंशलोचन की उत्तमता उसके सेलिसिलक एसिड पर निर्भर है। जिसमें जितना अधिक यह एसिड होता है, वह उतना ही उत्तम होता है। इसके प्रयोग से श्वसन संस्थान की श्लेष्मकला को पुष्टि मिलती तथा कफ की मात्रा कम होती है। इस कार्य के लिये, इसके योग से बना हुआ सितोपलादि चूर्ण का व्यवहार विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है। (इसका प्रयोग आगे विशिष्ट योगों में देखिये)।

—डा0 बा0 ग0 देसाई

यूनानी मतानुसार—यह दूसरे दर्जे में शीत और तीसरे में रूक्ष है। मतान्तर से तीसरे दर्जे में शीत व रूक्ष है। यह कब्ज करने वाला, हृदय को आनन्द देने वाला, आमाशय की उष्णता निवारक, तीव्र शीतजनन है। पैत्तिक हृत्स्पंदन, मूर्च्छा एवं बेचैनी के लिए गुणकारी है। पित्तज वमन का निवारक एवं उष्ण यकृत और आमाशय के लिए लाभप्रद है। यह पित्तज अतिसार को तथा शुक्रमेह को, अनैच्छिक वीर्य स्राव को बन्द करता है। मुखपाक, मुख व्रण तथा मुख की फुंसियों में अकेले गुलाब अर्क के साथ इसका सेवन और अवचूर्णन गुणकारी है। अधिक प्यास को दूर करने के लिए इसे 1 तोला एक पोटली में बांधकर जल में डाल देवें तथा उस जल में से थोड़ा—थोड़ा जल पिलाते रहने से तृषा कम हो जाती है। मिट्टी खाने वाले बच्चों को इसकी कंकरी हाथ में देने से मिट्टी खाने की आदत छूट जाती है। दांतों की पुष्टि के लिए इसे मंजनों में डालते हैं।

—यूनानी द्रव्यगुण

साधारण विष विकार—में इसे शहद के साथ बार—बार चटाते हैं। मुख के छालों पर इसे शहद में मिला लेप करते हैं।

श्वेत प्रदर में— 1 मा0 वंशलोचन को 2 या 3 मा0 चूर्ण के साथ मिला पके केले के साथ खिलाते हैं।

(21) कास, श्वास, जीर्ण ज्वर तथा उरःक्षत पर—इसका चूर्ण 1 मा0 के साथ पिप्पली चूर्ण 3 रत्ती मिला कर (यह 1 मात्रा है) शहद के साथ चटाने से श्वास व कास में लाभ होता है।

साधारण शुष्क कास में—इसे 10 से 20 रत्ती तक की मात्रा में शहद के साथ चटाते रहने से लाभ होता है। बालकों के शुष्क कास व श्वास में भी लाभकारी है।

जीर्ण ज्वर पर—इसके साथ गिलोय सत्व समभाग 4—4 रत्ती तथा छोटी पिप्पली चूर्ण 2 रत्ती मिलाकर (यह 1 मात्रा है) शहद के साथ दिन में 3 बार देते रहने से अग्निमांद्य एवं दाहयुक्त जीर्ण ज्वर दूर हो जाता है।

उरःक्षत पर—इसकी मात्रा 4 रत्ती, दिन में 3 बार घृत व शहद के साथ देते रहने से क्षत शुद्ध होकर भर जाता है।

—गां0 औ0 र0

अथवा—सितोपलादि चूर्ण के साथ प्रवालभस्म 1 से 2 रत्ती तक मिलाकर घृत व शहद के साथ सेवन कराने से विशेष लाभ होता है।

(22) सुजाक, मूत्रदाह तथा प्रमेह पर—

सुजाक पर—वंशलोचन के साथ शीतल मिर्च (कबाब चीनी या शीतल चीनी) नागकेशर व छोटी इलायची के बीज समभाग महीन चूर्ण कर लें। 1½ से 3 माशा की मात्रा में चूर्ण को 6 बूंद चन्दन का तैल मिलाकर देवें। इस प्रकार

प्रातः सायं 3 दिन तक देने से मूत्र वेदना दूर होती तथा नये सुजाक का दमन हो जाता है।

नोट–रोगी को पथ्य में रोटी, घृत, शक्कर, बहुत थोड़ी दाल देवें, नमक कम देवें, दूध न पीवें। यह रोग दब जाने पर शिलाजीत प्रधान या अन्य औषधि लम्बे समय तक देकर रोग के विष को नष्ट कर देना आवश्यक है। अन्यथा जीवन भर रोग की जड़ रह जावेगी। –गां० औ० र०

मूत्रदाह पर–उक्त प्रयोग लाभकारी है, उसमें चन्दन तैल न मिलाते हुए केवल मिश्री मिले हुए दूध के साथ उक्त मात्रा में ही सेवन कराने से, अथवा केवल वंशलोचन को गोखरू के अर्क के साथ, या गोखरू के पत्तों के स्वरस के साथ सेवन कराने से भी मूत्र की जलन दूर होकर मूत्र साफ आने लगता है। अथवा–इसके चूर्ण को गोखरू व मिश्री चूर्ण मिला कच्चे दूध की लस्सी के साथ देवें। सर्व प्रकार के प्रमेहों पर–उक्त सुजाक या पूयमेह का प्रयोग प्रायः सर्व प्रमेहों पर लाभदायक है। उस प्रयोग के 4 द्रव्यों के खूब महीन किये हुए चूर्ण में उत्तम चन्दन का तैल अच्छी तरह मिलाकर छोटी सुपारी जैसी गोलियां बना रखें। नित्य प्रातः सायं एक–एक गोली को लगभग 4 तोला ठंडे जल में घोलकर उसमें 6 माशा मिश्री का चूर्ण मिला सेवन करावें। इसके सेवन से प्रथम दिन ही मूत्र दाह, जलन आदि विकार दूर होते हैं तथा 7 दिन में दुस्तर प्रमेह नष्ट हो जाता है। पथ्य में गेहूँ की रोटी अरहर की दाल, घृत और शक्कर केवल इतने ही पदार्थ लेवें। –बं० गु०

(23) पैत्तिक विकार रक्तपित्त, शारीरिक अति उष्णता तथा ज्वर पर–

पैत्तिक विकारों पर–वंशलोचन 14 मा०, ककड़ी बीज की गिरी, चिलगोजा की गिरी, बबूल का गोंद और बड़ी इलायची के बीज प्रत्येक 24½ मा०, निशास्ता, कतीरा 7–7 माशा और खांड़ 17½ मा० सबको कूट छानकर बादाम तेल में मिश्रित कर शहद के पाक में मिला अवलेह बना लेवें। मात्रा 1 से 2 तोला तक सेवन से पित्त की उग्रता कम होती है। उरःस्थल एवं फुफ्फुस के व्रण तथा पित्तज कास में लाभदायक है। इस प्रयोग को मिहूक तवासीर कहते हैं। –यू० चि० सा०

रक्तपित्त पर–वंशलोचन के 2 माशा चूर्ण को अडूसा के स्वरस 1 तोला में मिला सेवन कराते हैं। अथवा इसके चूर्ण को शहद और मिश्री के साथ सेवन करावें।

मुख पाक पर–इसे छोटी इलायची बीज, श्वेत कत्था व गेरू समभाग महीन चूर्ण कर थोड़ा–थोड़ा मुख में डालते रहें तथा साथ ही 4 तो० गुलाब फूल के गुलकन्द में लगभग 2 से 3 माशा तक वंशलोचन मिला प्रातः व रात्रि में सेवन करें।

शरीर की उष्णता कम करने के लिये–4रत्ती बंशलोचन को 2 रत्ती प्रवाल पिष्टी या सत्व गिलोय या मुक्तापिष्टी के साथ प्रतिदिन गोदुग्ध से सेवन करावें। इस प्रयोग से उष्ण प्रकृति वालों के स्वप्नदोष, अनैच्छिक वीर्यस्राव, कृशता आदि में भी लाभ होता है। –संकलित

ज्वर पर (विषम ज्वर)–हुब्ब बुखार–वंशलोचन 2 तोला कुनैन सल्फ (Quinine sulph.), गिलोय सत 6–6 माशा तथा गोंद बबूल 3 मा० कूट–पीस छान कर थोड़े जल में घोटकर मूंग जैसी गोलियां बना लेवें। ज्वर आने से पूर्व 1–1 गोली प्रातः मध्याह्न व सायंकाल सेवन से विषम ज्वर दूर होता है। विरेचन के बाद प्रयोग करने से अधिक लाभप्रद है। –यू० चि० सा०

(24) क्षय (राजयक्ष्मा) तथा वीर्य वृद्धि के लिए।

क्षय पर–वंशलोचन को स्वर्ण भस्म, अभ्रक भस्म तथा मृगशृंगभस्म के साथ (यथोचित प्रमाण एवं अनुपान के साथ) कई मास तक देना चाहिये। इससे प्रायः क्षय रोगियों की प्रथमावस्था में लाभ होते देखा गया है।

वीर्य वृद्धि के लिये–वंशलोचन को 1 माशा की मात्रा में प्रतिदिन सेवन करें अथवा इसे प्रवाल पिष्टी, अभ्रक भस्म, स्वर्णबंग, शिलाजीत आदि औषधियों में मिलाकर सेवन करना विशेष लाभप्रद है।

(25) गर्भवती स्त्रियों के लिये–गर्भस्राव या गर्भपात की आशंका हो तो वंशलोचन 1 मा० और असली असली पत्थर का जीव (कल्बुल हज्र) 1 रत्ती दोनों को पृथक पीसकर मिला दें। (यह एक मात्रा है) ऐसी 2–3 मात्रायें दिन में आवश्यकतानुसार प्रयोग करें। यह गर्भपात एवं स्राव के लिए अमोघ प्रयोग है।

सुन्दर, सुदृढ़ पुत्र प्राप्ति के लिए–गर्भवती को वंशलोचन, कमलगट्टे की गिरी (मध्य का हरा भाग निकाल दें।) दोनों समभाग महीन चूर्ण कर उसमें दो गुनी मिश्री मिला रखें। 2 से 3 मा० तक गौ के ताजे दूध से (दूध इच्छानुसार लें) दिन में दो बार सेवन करें। इस योग से सुखपूर्वक प्रसव होकर पुत्र की प्राप्ति होती है। इस से स्तनों में दुग्धाभाव या स्तनों का शैथिल्य भी दूर होता है। –यू० चि० स०

गर्भवती स्त्रियों को प्रायः मिट्टी, राख, कोयला हानिकारक वस्तुओं के खाने की आदत पड़ जाती है, जिससे उनके स्वास्थ्य एवं गर्भस्थ बालक को भी नुकसान पहुंचता है। ऐसी दशा में उसको वंशलोचन प्रतिदिन थोड़ा–थोड़ा खाते रहने से उसके स्वास्थ्य में सुधार होता तथा गर्भस्थ बालक भी पुष्ट होता है।

(26) दन्त विकार, नेत्र विकार तथा अग्नि दग्ध पर–

दन्तमंजन—वंशलोचन, छोटी इलायची के बीज व रुमीमस्तंगी समभाग महीन पीसकर रख लें। नित्य प्रातः सायं इसे दांतों पर मलने से दांतों का मैल एवं दन्त विकारों को दूर कर वे मोती के समान चमकने लगते हैं।

नेत्र विकारों पर—वंशलोचन 12 भाग, छोटी इलायची बीज 10 भाग, आंवला 6 भाग, कालीमिर्च 4 भाग, छोटी पिप्पली 2 भाग तथा इन सबसे आधा भाग शुद्ध सुरमा सबको महीन पीस छानकर रखें। इस सुरमे को प्रतिदिन नेत्रों में लगाने से नेत्र के सर्व विकार दूर होते हैं।

—संकलित

अग्निदग्ध पर—वंशलोचन, पाकर (या पीपल) की छाल, लाल चन्दन, गेरू और गिलोय समभाग का चूर्ण कर घृत (गौघृत) में मिलाकर लेप करने से अग्निदग्ध व्रण नष्ट होते हैं।

—शा0 सं0

नोट—मात्रा पत्र, अंकुर, छाल आदि का क्वाथ 2½ से 10 तोला तक। चूर्ण 3 माशा से 1 तोला तक।

अधिक मात्रा में—फुफ्फुस के लिये हानिकर है। हानिनिवारक—कतीरा और फिंदक की गिरी (फिंदक का प्रकरण पीछे देखें) हैं।

वंशलोचन—1 से 3 माशा तक। इसका अधिक सेवन बाजीकरण शक्ति तथा फुफ्फुसों के लिये हानिकारक है। हानिनिवारक—शहद, मस्तंगी, उन्नाव, एलुआ, केसर आदि हैं।

इसके प्रतिनिधि—कुलफा और रायतुंग (सुमाक) है।

विशिष्ट योग :

(1) रजः शोधक क्वाथ—इसके कोमलपत्र, सोया बीज, अमलतास का गूदा, बायबिडंग, कलौंजी, मूलीबीज, हंसराज, अजमोद, मजीठ, अपामार्ग मूल, तोदरी सुर्ख, हरमल और इन्द्रायण मूल प्रत्येक 1—1 तोला, चित्रक मूल की छाल 8 माशा, कपास मूल की छाल व गाजर के बीज 2—2 तोला सबका जौकुट चूर्णकर उसमें से 2 तोले चूर्ण 40 तोला जल में शाम को मिट्टी के पात्र में भिगो प्रातः पकावें। 20 तोला शेष रहने पर छानकर आधा क्वाथ प्रातः 1 तोला गुड़ व महायोगराज गूगल 1 मात्रा के साथ लेवें। शेष क्वाथ इसी प्रकार शाम को लेवें। जिस दिन मासिक धर्म हो उसी दिन से प्रारम्भ कर 4 दिन तक सेवन से मासिकधर्म के सर्व विकार—अनियमितरूप से होना, कष्ट के साथ होना आदि दूर हो जाते हैं। ऋतुस्राव खुलकर साफ होता है। गर्भाशय के सब विकार दूर होते, जमा हुआ दूषित रक्त मासिकधर्म के साथ निकल जाता एवं गर्भाशय सन्तानोत्पत्ति के योग्य हो जाता है।

—ब0 चं0

(2) रजःप्रवर्तक क्वाथ—बांस की गांठ (पोर्वा), अथवा कोमल पत्र, अमलतास की फली की छाल, कपास मूल, गाजर बीज, मूली बीज, काले तिल, गोखरू, इंद्रायन मूल, कचरी बीज, सौंफ की जड़ समभाग जौकुट कर 1 तोला चूर्ण को 32 तोला जल में चतुर्थांश क्वाथकर छान कर उसमें 1 तोला पुराना गुड़ मिला प्रातः पिलावें। 7 दिन पिलाने से बहुत समय का रुका हुआ मासिकधर्म पुनः शुरू हो जाता है। ध्यान रहे, यह क्वाथ बहुत उग्र है। कोमल प्रकृति वाली स्त्री को या गर्भवती को नहीं देना चाहिए।

—गां0 औ0 र0

(3) सितोपलादि चूर्ण—मिश्री से आधा वंशलोचन, उससे अर्ध भाग पिप्पली, उससे अर्ध भाग छोटी इलायची बीज तथा उससे आधी दालचीनी, इनका महीन चूर्ण करलें। यह आयुर्वेद का सुप्रसिद्ध सितोपलादि चूर्ण है। इसका मुख्य कार्यकारी एवं प्रभावशाली द्रव्य वंशलोचन है। यह जितना ही उत्तम तथा प्रामाणिक होगा, उतना ही यह योग उत्तम कार्यकारी होगा। इसकी उत्कृष्टता एवं निकृष्टता वंशलोचन पर ही निर्भर है। इसके प्रत्येक द्रव्य को अलग—अलग कूट पीसकर कपड़छन करना चाहिए। कपड़छन किए हुए वंशलोचन को 6 घंटे तक खरल कर सुरक्षित रखें।

इसकी मात्रा 2 से 4 माशा दिन में 2 बार घृत व शहद के साथ देवें। कफप्रधान विकारों में शहद दूना मिलावें। वात व पित्त प्रधान रोगों में शहद घी से आधा लेवें। प्रथम घृत मिलाकर फिर शहद मिलाना चाहिए। जिस खांसी में कफ सरलता से निकलता हो, उसमें इसे केवल शहद के साथ देवें। यह कास, श्वास, क्षय, हाथ पावों की जलन, मुख से रक्त पड़ना, अरुचि, अग्निमांद्य, पसली का दर्द, जीर्ण ज्वर, धातुगत ज्वर, बालकों की कमजोरी, नेत्रों की उष्णता, कंठ की जलन आदि में विशेष लाभकारी है। राजयक्ष्मा में भी यह लाभकरी है। चरक ने राजयक्ष्मा चिकित्सा में इसकी योजना की है।

—च0 चि0 अ0 8

गर्भवती स्त्री को लगातार 4—6 मास तक इसके सेवन से गर्भ को पोषक तत्व प्राप्त होकर वह पुष्ट एवं तेजस्वी होकर जन्म लेता है। यह प्रयोग पुरुष, स्त्री, बालक एवं वृद्ध सबके लिए हितकारी है। यदि इस प्रयोग में (यह कुल 27 तो0 हो तो उसमें) गिलोय सत 4 तो0 और प्रवाल भस्म 2 तोला मिला देने से यह और भी प्रभावशाली होकर बल, कांति एवं ओज की वृद्धि करता है।

सितोपलादि चूर्ण 1 तोला, भैंस का शुद्ध घृत 1 तोले दोनों को कांच या मिट्टी के पात्र में रख उस पर गाय या भैंस का धारोष्ण दूध दोहकर पीलें। प्रातः दो मास तक सेवन से अपार शक्ति का संचार होता है।

नोट—तालीसादि चूर्ण में भी वंशलोचन प्रभावकारी है।

इसका प्रयोग इस ग्रन्थ के भाग 3 में तालीस पत्र नं0 1 के प्रकरण में देखिये।

बृहत सितोपलादि चूर्ण में सितोपलादि के उक्त 5 द्रव्यों के अतिरिक्त मुलैठी, बनफसा के फूल, गावजवां और तालीस पत्र ये चार द्रव्य वंशलोचन से अर्ध अर्ध भाग किए जाते हैं। मिश्री 16 तोला बंशलोचन 8 तोला, मुलैठी, गुल बनफ्शा, गाजवां, तालीसपत्र 4–4 तोला, छोटी इलायची 2 तोला और दालचीनी 1 तोला)। मात्रा व अनुपान यथोचित या सितोपलादि के जैसे ही देते हैं। इसके गुणधर्म भी उसी प्रकार हैं। फुफ्फुस, सन्निपात (निमोनिया) में विशेष लाभकारी है। कफ को आर्द्र कर, ढीलाकर शीघ्र ही बाहर निकाल देने की भी इसमें विशेषता है। वह श्वासवाहिनियों की श्लेष्म कला के क्षोभ को शीघ्र ही दूर करता है, जिससे शुष्क कास सहित ज्वर सरलतापूर्वक शमन हो जाता है। प्रतमक श्वास में भी लाभकारी है।

(4) वंशलोचन प्रधान–प्रमेहान्तक, पूयमेहान्तक (सुजाक नाशक) तथा कफविकारादि नाशक वटी के प्रयोग–

प्रमेहान्तक वटी–वंशलोचन, शुद्ध शिलाजीत, रूमीमस्तंगी, कुन्दर गौंद, कबावचीनी, इलायची व हल्दी समभाग महीन चूर्ण कर चन्दन तैल के साथ घोटकर मटर जैसी गोलियां बना लेवें। 2 गोली तक जल के साथ सेवन से प्रमेह, मूत्रनली का शोथ, मूत्रावरोध, मूत्र के मार्ग से पूय निकलना, वेदना आदि नष्ट होते हैं। –आयु0 नि0 माला

सुजाक नाशक वटी या चूर्ण का प्रयोग ऊपर वंशलोचन विषयक प्रयोग नं0 22 में देखिये।

कफ विकारादि नाशक वटी–वंशलोचन, शुद्ध संखिया, छोटी इलायची और जायपत्री समभाग चूर्ण कर अर्क गुलाब में 2 दिन खरलकर ज्वार के दाने जैसी गोलियां बना लेवें। 1 गोली दूध के साथ सेवन से कफ विकार, प्रतिश्याय, श्वास, जीर्ण ज्वर, वमन एवं वात विकारों में विशेष लाभप्रद है। कफ को पिघलाकर बाहर निकाल देती, उसकी उत्पत्ति कम करती, हृदय को बल देती तथा निर्बलता दूर करती है। यह जीर्ण वात प्रकोपज व्याधि में शीघ्र फलप्रद है।

(5) जीर्णज्वरांतक पाक–बंशलोचन 8 तो0 श्वेत जीरा, मुलैठी, प्रवाल भस्म, छोटी इलायची बीज और गिलोय सत 2–2 तोला, पिप्पली, श्वेतचंदन का बुरादा 4–4 तोला सबका महीन चूर्ण कर उत्तम मिश्री 40 तो0 की चाशनी में मिलाकर पाक जमा दें। 4 माशा से 1 तोला तक शहद के साथ प्रातः सायं सेवन से जीर्ण ज्वर, निर्बलता, खांसी आदि दूर होती है।

नोट–शेष उत्तमोत्तम पाकों के प्रयोग हमारे बृहद्पाक संग्रह में देखिये।

बाइकल–देखें–बेकल। बाहशी–देखें–बेदसादा।